GURUKUL PATRIKA
1982 G.K.U.

GURUKUL PATRIKA
1982 G.K.U.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

Mél-12
16 OCT 1999
0,4,152/22 BMR
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका



ा--२०३६ | वर्ष--३४ | अङ्क--६
र--१९८२ | पूर्णाङ्क--३३६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डा० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डा० जबरसिंह सैंगर (कुलसचिव)

विषय–सूचि



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

भाद्रपद २०३९ | वर्ष : ३४, अंक : ६
सितम्बर १९८२ | पूर्णाङ्क : ३३६

श्रुति सुधा

[1]सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ।। साम० ९१ ।।

अन्वय :—[वयम्] सोमं राजनं वरुणम्–आदित्यं विष्णुं सूर्यं [2]ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्–अग्निम् अनु–आ–रभामहे ।

सं० अन्वयार्थ :—शान्त, सर्वत्रप्रकाशमान्, वरणीय अखण्ड सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक, सर्वज्ञ वा सृष्टिकर्ता और वृहति–वेदवाणी के अधिपति, ज्ञानस्वरूप प्रभु का हम सदा आश्रय लेते हैं ।

अन्वयार्थ :—(सोमं राजनं, वरुणम्, आदित्यं, विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्–अग्निम् अनु–आ–रभामहे) सोम्य गुणों से सम्पन्न शान्तस्वरूप; सर्वत्र देदोप्यमान; पापनिवारक वरणीय सर्वश्रेष्ठ; अखण्डनीय; विष्णु सर्वत्रव्यापक, सूर्य अर्थात् सर्वप्रकाशक, सर्वप्रेरक; ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता, सर्वज्ञ और वृहति–वेदवाणी के अधिपति ज्ञान-प्रकाश के अनुपम स्रोत प्रभु का हम बारम्बार स्मरण करते हैं, हम अनुकूल होकर आह्वान करते हैं वा हम आश्रय लेते हैं ।

जो शान्तस्वरूप, सारे संसार का सम्राट् सब को श्रेष्ठ बनाने वाला सर्वश्रेष्ठ, आदित्य के समान देदीप्यमान् कण-कण में बसने वाला, सूर्य–सर्वत्रगतिमान् सर्वप्रेरक, ब्रह्मा–सब से महान् सर्वज्ञ वेदज्ञान का अधिपति ज्ञान-प्रकाश का अद्भुत् स्रोत प्यारा प्रभु है उसी का ही हमें सदा अनुकूल मन से स्मरण करना चाहिये, उसी का ही हमें सदा अपनी रक्षा के लिये आह्वान करना चाहिये, उस का ही हमें अपने रक्षण–संरक्षण के लिये सदा आश्रय लेना चाहिये । क्योंकि वही सब से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ सहारा है ।

---

१ सोमं राजानमवसेऽग्निं गोभिर्हवामहे······। इति ऋक्पाठ ।

२ "ब्रह्मा सर्वविद्यः, सर्वं वेदितुमर्हति" निरु० १.२.१२.

३ अन्वारभामहे=अनु–आ–रभामहे, पुनः पुनः स्मरण करते हैं, निरन्तर अपना बना लेते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुषों के वचन—

१—माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हँसमध्ये बको यथा ॥

यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हँसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

महर्षि दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश द्वि० स०)

२—सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चान्दी, हीरा, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण कराने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

महर्षि दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश तृ० स०)

३—दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ विदुर नीति ७.६१ ॥

दुःखार्तों, अहंकारियों, नास्तिकों, प्रमादियों—आलसियों, असंयमियों अर्थात् विलासियों और जो उत्साह से हीन होते हैं उन के पास लक्ष्मी नहीं रहती है। (विदुर जी)

४—कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ॥ विदुर नीति ७.५५ ॥

मन वचन और कर्म से मनुष्य जिस को पुनः पुनः—बार-बार सेवन करता हैं, वही इस को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, अतः मनुष्य को चाहिये कि वह सदा शुभ आचरण ही करें।

५— यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ गीता ३.६ ॥

यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मानव समुदाय कर्मों द्वारा ही बन्धता है। इसलिये हे कुन्तिपुत्र अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भली-भांति कर्तव्य कर्म कर। (योगीराज श्रीकृष्ण)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक घोर वेश्यागामी युवक को उस के हितैषी मित्र महर्षि दयानन्द के पास ले गये और बोले— "महाराज ! इसे सन्मार्ग पर लगाईये।" महर्षि ने वेश्यावृत्ति से होने वाले आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक पतन का चित्र उस के सम्मुख खींचा। फिर उन्होंने पूछा— 'युवको ! भला यह तो बताओ कि वेश्यावृत्ति से यदि लड़की उत्पन्न हो, तो वह लड़की किस की हुई ?" युवक के मित्रों ने कहा—"उस वेश्यासक्त पुरुष को।" महर्षि ने पूछा —"युवती होकर वह क्या करेगी ?" वह युवक स्वयं बोला—"भला और क्या करेगी ? बाजार में बैठेगी।" तब महर्षि ने मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा—"देखिये, संसार में कोई भी भला आदमी नहीं चाहता कि उस की पुत्री अपना शरीर बेचे। परन्तु वेश्यासक्त जन ही ऐसे हैं जो अपनी ही बेटियों को वेश्या बनाते हैं। आप ही सोचिये कि क्या यह बुरी बात नहीं ?"

यह सुनकर उस वेश्यागामी युवक के रोंगटे खड़े हो गये। उस ने झट महर्षि जी के चरणस्पर्श किये और सदाचार का व्रत लिया। आगे चल कर वह महर्षि जी का हृदय से शिष्य बन गया और उन के कार्यों में तन मन धन मे सहयोग करने लगा।

—स्वामी विवेकानन्द

एक बार मैं काशी में जिस जगह जा रहा था उस जगह एक ओर भारी जलाशय और दूसरी ओर ऊँची दीवार थी। उस स्थान पर बहुत से बन्दर थे। काशी के बन्दर बड़े दुष्ट होते हैं। अब उनके मन में यह विकार पैदा हुआ कि मुझे उस रास्ते पर से वे न जाने दे। वे विकट चीत्कार करने लगे और झट आकर मेरे पैरों से चिपटने लगे। उन्हें निकट आते देखकर मैं भागने लगा। किन्तु मैं जितना ज्यादा जोरसे दौड़ने लगा, वे भी उतनी ही अधिक तेजी से आकर मुझे काटने लगे। उन से छुटकारा पाना मुझे असम्भव सा प्रतीत होने लगा। ऐसे ही समय में एक अपरिचित जन ने मुझे जोर से आवाज दी—"बन्दरों का सामना करो।" मैं भी जैसे ही उलट कर कर उन के समान खड़ा हुआ, वैसे ही वे पीछे हटकर भाग गये।

समस्त जीवन में, जो कुछ भी भयानक है—उस का हमें सामना करना पड़ेगा. साहस पूर्वक उस के सम्मुख खड़ा होना पड़ेगा। यदि हमें मुक्ति या स्वाधीनता का अर्जन करना है, तो प्रकृति को जीतने पर ही हम उसे पायेंगे, प्रकृति से भाग कर नहीं। कायर पुरुष कभी विजय नहीं पा सकते। हमें भय, कष्ट और अज्ञान के साथ संग्राम करना पड़ेगा, तभी वे हमारे सामने से भागेंगे।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष चरितम्—

महर्षि दयानन्द

प्रयाग में गंगा के तट पर एक महात्मा जी रहते थे। वे बड़े वृद्ध थे। जब कभी महर्षि दयानन्द जी उन्हें मिलते, तो महर्षि जी को वे 'बच्चा' कहकर सम्बोन्धित करते। एक दिन उस वृद्ध महात्मा ने महर्षि जी को कहा—"बच्चा, अगर तू पहले से ही निवृत्ति–मार्ग में स्थिर रहता और इस परोपकार के झगड़े में न पड़ता तो तू इसी जन्म में मुक्त हो जाता। अब तो तुम्हें एक ओर जन्म धारण करना पड़ेगा।"

महर्षि ने कहा—"महात्मन्! मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों जनों की मुक्ति की चिन्ता मुझे चलायमान कर रही है उनकी मुक्ति हो जाए, मुझे भले ही क्यों न कई जन्म धारण करने पड़ें। दुःखों से, कष्टों से, आपत्तियों से, दीन-हीन अवस्था से परम पिता परमेश्वर के इन पुत्रों को मुक्ति दिलाते-दिलाते मैं स्वयं ही मुक्त हो जाऊँगा।

स्वामी श्रद्धानन्द

१४ श्रावण सम्वत् १९३६ को क्रान्ति के अग्रदुत महर्षि दयानन्द बरेली पधारे। मुंशीराम के पिता श्री नानक चन्द जी को आदेश मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों में कोई उपद्रव न हो ऐसा प्रबन्ध करें। प्रबन्ध के लिये वे स्वयं सभा में गये और महर्षि के व्याख्यान से बड़े प्रभावित हुए, साथ ही उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि उनके नास्तिक पुत्र की संशय–निवृत्ति उनके सत्संग में हो जायेगी। घर आकर उन्होंने मुन्शीराम से कहा—"बेटा मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आए हुए हैं, वे बड़े ही विद्वान् महापुरुष हैं। उन का व्याख्यान सुनने पर मुझे विश्वास है तुम्हारे सब संशय दूर हो जायेंगे। कल तुम उन का व्याख्यान सुनने के लिये मेरे साथ चलना।"

दूसरे दिन जब मुंशीराम जी अपने पिता जी के साथ वहाँ व्याख्यान सुनने गये। तो ज्यों ज्यों वे महर्षि दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान सुनते गये त्यों त्यों उनका हृदय महर्षि की ओर आकर्षित होता गया। उस दिन मुन्शीराम जी को ऐसा लगा कि जैसे किसी भटके हुए मानव को कोई राह मिल गई हो, और वह उस राह पर आगे बढ़ने के लिये निरन्तर उत्सुक होता जा रहा हो। महर्षि का उस दिन का व्याख्यान परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' पर था। व्याख्यान के सम्बन्ध में मुंशीराम (जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से अत्यन्त विख्यात हुए) ने स्वयं लिखा है—"वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद मैं कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना उस ऋषि-आत्मा का ही काम था।"

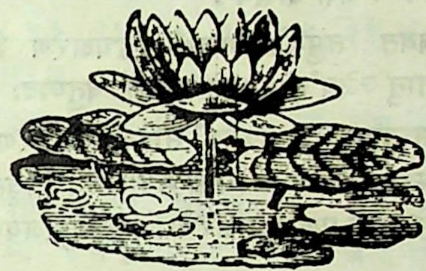
सन्त अब्दुल्ला

एक बार सन्त अब्दुल्ला बाजार से कपड़ा खरीदने के लिये अपने बेटे के साथ बाजार गये। दुकानदार ने उन्हें कपड़ा दिखाया। सन्त अब्दुला ने मूल्य में कुछ कमी के लिये कहा, पर वह वस्त्र विक्रेता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं माना । उस दुकानदार का पड़ोसी उस सन्त अब्दुल्ला को जानता था, अतः वह अपने पड़ोसी उस दुकानदार से बोला, भाई साहब ! "जानते हो, ये कौन है ? अब्दुल्ला सन्त हैं, अब्दुल्ला सन्त हैं ।"

अब्दुल्ला सन्त यह शब्द सुनते ही वहाँ से उठ खड़े हुए और अपने बेटे का हाथ पकड़ कर उस से कहने लगे—"बेटा, चलो ! हम यहाँ कपड़ा पैसों से खरीदने आए हैं, अपने दीन से नहीं ।" और वे कपड़ा लिये बिना चल दिये । दुकानदार उस महान् सन्त अब्दुल्ला की बात सुनकर उस की महानता पर स्तब्ध हुआ-हुआ देखता ही रह गया ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यजुर्वेद और संख्यायें —

—विजयेन्द्र कुमार गणित विभाग, विज्ञान महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेदों को शास्त्रकारों ने समस्त ज्ञान का भण्डार बताया है। वेदों के अध्ययन से समस्त्र शास्त्र उनमें सम्मिलित दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से यजुर्वेद में 1जिस प्रकार संख्याओं का प्रयोग हुआ है उस प्रयोग में कुछ विशेषता प्रकट होती है। इस प्रकार वेदों के रचना काल में गणित के ज्ञान, पर प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत लेख में यजुर्वेद के कुछ अंश तथा प्रयुक्त संख्याओं की विशेषताओं पर विचार किया गया है। यजुर्वेद का निम्न अंश देखिये।

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत तमुज्जेषमाखनौ द्वचक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रील्लोका नुदजयत्तानु ज्जेषँसोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥

पूषो पञ्चाक्षरेण पञ्चादिशऽउदजयत्ता उज्जेषँ सविता षडक्षरेण षड् ऋतू नुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशनुदजयँस्तानुज्जेषम् ॥ मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतँस्तोम मुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्ता मुज्जेषमिन्द्र उ एकादशाक्षरेणं त्रिष्टूभमुदजयत्ता मुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयंस्ता- मुज्जेषम् ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशँस्तोममुदजयँ ,स्तमुज्जेषँ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशँ स्तोममुद जयँ स्त मुज्जेषम्।

आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश ँ स्तोममुद जयसँ–स्तमुज्जेषमदिति षोडशाक्षरेण षोडश ँ स्तोम मुदजयस्तमुज्जेषं प्रजापतिः।

सप्तदशाक्षरेण सप्तदशँ स्तोममुदजयत्त–मुज्जेषम ॥

प्रस्तुत अश में जिन संख्याओं का प्रयोग किया गया है उन का समुच्चय निम्न प्रकार है (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ६. १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७) इस समुच्चय को निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है—

स=[यः य=प्राकृत संख्या, य < १८]

निम्न अंश पर विचार करते है –

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो घ्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविँशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभो वर्त्तः सविँशो वर्चो द्वाविँशः सम्भरणस्त्रयोविँशो योनिश्चतुर्विँशः। गर्भाः पञ्चविँशऽओज स्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिँशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिँशो ब्रध्नस्यविष्टपं चतुरित्रँश नाकः षट्त्रिँशो विवृत्तोऽष्टा–चत्वारिँशो धर्त्रचतुष्टोमः।

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय निम्न प्रकार है—

स=(१५, १७, २१, १८, १६, २०, २२, २३, २४, २५, ३१, ३३, ३४, ३६, ४८)

ऐसी संख्या को जो सोची गयी बड़ी से बड़ी संख्या से भी बड़ी हो उसे अनन्त कहा गया है। यजुर्वेद में इसका वर्णन भी है। इसके लिये निम्न अंश देखें—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

असंख्याता सहस्त्राणि ये रुद्राऽअधिभूम्याम् ।
तेषां सहस्त्र योजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

निम्न अंश में संख्याओं का प्रयोग विशिष्ट है । ये संख्याए विशेष प्रकार की है ।

एका च मे तिस्रश्च में तिस्रश्च में पञ्च च में सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मेऽ एकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च में नवदश च म ऽएकविं शतिश्च म ऽएक विंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविं शतिश्च में त्रयोविं शतिश्च मे पञ्चविं शतिश्च मे पञ्चविं शतिश्च मे सप्तवि ं शतिश्च मे सप्त– विं शतिश्च मे नवविं शतिश्च मे नववाॅ शतिश्च म ऽएकत्रिं शच्चम ऽएकत्रिं श्च्च में ऽत्रयस्त्रिं– शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय इस प्रकार है—

स=(३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५ २७, २९ ३१, ३३)

इसे निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है—

स=(यः य=विषय प्राकृत संख्या, य < ३४) इस अंश में समस्त संख्याए दो से विभाजित न होने वाली हैं ।

अगले अश में प्रयुक्त संख्याए भी अति विशिष्ट हैं ।

चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे ऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशति– श्च मे विंशतिश्च में चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च में षटत्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वरिंशच्च मे ऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय —

स=(४. ८. १२, १६, २०, २४, २८, ३२. ३६, ४०, ४४, ४८,)

अथवा

स=(यः य=४ न. न=१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२)

इस प्रकार सब संख्याएं, संख्या चार की गुणक होने के कारण विशेष है ।

अभी तक प्रयुक्त संख्याएं पूर्णाङ्क थी । सख्या के विभाजन का कहीं विवरण नहीं था । अगले अंश में इस तरह की संख्याएं प्रयुक्त हुई है जो एक संख्या और दूसरी संख्या के बीच में आती है । अर्थात् पूर्ण संख्या की आधी संख्या का प्रयोग किया गया है ।

त्र्यवयो गायत्र्यै पंचावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यैं त्रिवत्साऽअनुष्टुमे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय निम्न प्रकार लिखा जा सकना है ।

$$स = \left\{ १\frac{१}{२}, २, २\frac{१}{३}, ३ \right\}$$

$$अथवा\ स = \left[\frac{३}{२}, \frac{४}{२}, \frac{५}{२}, \frac{६}{२} \right]$$

अथवा स = [यः य = १–२ क, क = ३, ४, ५, ६]

इस प्रकार संख्याओं के अर्धांशों का प्रयोग देखने को मिलता है ।

आधुनिक गणित में संख्यओं को एक रेखा की सहायता से प्रकट किया जाता है । शून्य मध्य में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होता है। दाहिनी और शून्य से बाद आने वाले अंक १, २, ३, ४—इत्यादि अनन्त तक और बायी और —१, —२, —३, —४………ऋणात्मक अनन्त तक प्रदर्शित किये जाते है। धनात्मक अनन्त को अति दीर्घ तथा ऋणात्मक अनन्त को अति लघु भी कहा जाता है। यजुर्वेद में इनका प्रयोग भी मिलता है। निम्न अंश देखिये।

अथैतानष्टौ विरूपाना लमतेऽतिदीर्घः चाति ह्स्वं चाति स्थूलं चाति–कृशं चाति शुक्लं चाति कृष्णं चाति कुल्वं चाति लोमशं च। अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मा गृध्रः पुंश्चलीकितवः क्लोबोऽशूद्रा–ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः।

एक सौ की संख्या का प्रयोग बहुत बार हुआ है। यजुर्वेद का एक अंश इस प्रकार है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

इस प्रकार यह विदित होता है कि कई स्थलों पर संख्याओं का प्रयोग किसी नियम के अनुसार हुआ है अर्थात् प्रयुक्त संख्याएं किसी विशेष लय में है और अधिक अध्ययन से कुछ और भी विशेषताओं की जानकारी मिलने की सम्भावना है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन करने पर वेदो में वर्णित ऐसे नियमों की जानकारी मिल सकती है जो बहुत दिनों बाद संसार को ज्ञात हो सके और यह भी हो सकता है कुछ ऐसे नियम ज्ञात हो जो अभी तक अज्ञात है। इस प्रकार वेदो में सम्पूर्ण ज्ञान के दर्शन होते हैं।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक जीवनम्—

—प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु" वेद विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

१ ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट,
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनस्कृणोमि ।। अथर्व का० ३.३०.५ ।।

व्याख्या—ज्यायस्वन्त इति-कश्चित् कुलवृद्धः स्वपरिवारजनान् उपदिशति-हे वत्साः ! अस्माकं परिवारस्य सर्वे सदस्या पुरुषायुष-जीविनो भूयासुः येन यूयं ज्यायस्वन्तः प्रकृष्ट कुलवृद्धवन्तः पूजनीयान् पूजयन्तः। चित्तिनः युक्ताऽयुक्तविवेचनचतुराः सम्यक् चिन्तनपराः। संराधयन्तः सहोद्योगेन कार्याणि साधयन्तः। सधुराश्चरन्तः। समान-कार्यभाराः "धूर्यानमुखभारयोः" इति हेमचन्द्राचार्याः। तथा 'धूः स्त्री क्लीबे यानमुखम्"। इत्यमरः। अथवा एक धुरि नियुक्ता अश्वा इव समानगतयो न तु परस्परविपरीतप्रयत्ना इत्यर्थः। अन्यो-अन्यस्मै वल्गु वदन्तः परस्परं मधुरमालपन्तः एत दिवसावसाने समवेता भवत। मां प्रत्यागच्छत वा। अनेन विधिना व्यवहरतो-युष्मान् अहं सध्रीचीनान् समानगतिकान् समानपूजितपूजितव्यान् संमनसः समानभावनावतश्च कृणोमि करोमि। सह पूर्वस्य अञ्चतेः "सहस्य सध्रिः" (अष्टाध्यायी ६.३.९५) इति सुलोपः सहेत्यस्य सध्रिरित्यादेशे कृते ख प्रत्ययेरूपम्। ज्यायस्यवन्तः—"वृद्धस्य च" (अष्टाध्ययी ५.३.६२) इति सूत्रेण वृद्धशब्दस्य ज्यादेशे, ततश्च "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" (अष्टा० ५.३.५७) अनेन सूत्रेण ईयसुनि कृते ततश्च मतुप्प्रत्यये मकारस्य च "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" (अष्टा० ८.२,९) इत्यमुना वकारादेशे रूपम्। यस्मिन् कुले परिवारे वा तस्य वृद्धजनानां समुचितः सत्कारः पूजा च विधीयते, यत्रच तादृशाः प्रशस्ताः स्थविराः सर्वसदस्येषु समानवृत्तयः नवयुवकानां सम्यक् पथ प्रदर्शनं समाचरन्ति तत्र सर्वाः सुखसम्पत्तयो नवनवाभ्युदयाश्च चिरपरिभ्रमणश्रान्ता अत एव स्थायिनिवासाभिलाषुका इव स्वयं समवेता भवन्ति। तस्माच्छ्रेयस्कामैर्मतिमभिद्भिः स्वकुलवृद्धानां सेवार्थं सर्वदा तत्परैर्भाव्यमिति वस्तु ध्वनिः। मन्त्रेऽस्मिन् ज्यायस्वन्तः चित्तिनः मा वियोष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः, अन्योऽन्यस्मै वल्गुवदन्तः, सध्रोचीनानः संमनसः इत्येकपदानि क्रमेण प्रशस्तवृद्धवन्तः, निरतिशयचारु चिन्तनचतुराः, कदाचिद् विद्वेषादिना विच्छिन्ना न भवत, संभूय कार्याणि साधयन्तः, उदुढसमानकर्त्तव्यभराः, नितरां मधुरमालपन्तः, कदाचित् सत्यपि वैमत्ये कटुत्वं दूरतः परिहरन्तः, समानगतिकान्, समान हृदयभावान् इति स्वकीयमेव अर्थान्तरं लक्षयन्ति। तदतिशयप्रकाशनं च फलम्। वाक्यगतोऽर्थान्तरसंक्रान्तवाच्यो ध्वनिः। सधुराश्चरन्त इत्यनयोः पदयोः समानायामेकस्यां धुरि रथादेरग्रभागे नियुक्ताः इति सधुरा अश्वा इति योजनायां लुप्तोपमाना उपमाऽत्र सम्भवति। अस्मिन् प्रसंगे रथस्य धूरूपो वाच्यार्थो बाधितः भोजनावसरे सैन्धवमानयेत्युक्ते हयाऽऽनयनवत्। धूः पदसान्निध्यादिह अश्वाध्याहार उपमानार्थमुपयुक्त एव।

भावार्थः—सर्वे मानवाः परस्परं भ्रातृरूपेण व्यवहरेयुः। परिवारे वृद्धाः समाद्रियन्ताम्। तेषामादेशानुसारि कार्यं कुरुत।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक रश्मियाँ—

—रामप्रसाद वेदलङ्कार

१ जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ।। अथर्व ३.३०.२ ।।

अन्वयार्थ : (जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाच वदतु) पत्नी पति के लिये मधुमयी शान्तियुक्त वाणी बोले ।

पत्नी को चाहिये कि वह पति से मधुमयी शान्तिमयी वाणी से ही बोले । और पति को भी चाहिये कि वह भी पत्नी से जब बोले तो मधुमयी शान्तिमयी वाणी से ही बोले ।

इस प्रकार जाया और पति-पत्नी और पति जब परस्पर माधुर्ययुक्त शान्तिमयी वाणी बोलेंगे तो इस से उन की शक्ल और अक्ल दोनों सही-सलामत बनी रहेंगी, उनकी आकृति और प्रकृति [=स्वभाव वा बुद्धि] ठीक-ठाक बनी रहेगी ।

नारी और नर=पत्नी और पति जब मन से यह सोच लेंगे-विचार लेंगे-निश्चय कर लेंगे कि उन्हें वेद के आदेशानुसार परस्पर मधुमयी, शान्तिमयी वाणी ही बोलनी है, अर्थात् मधु-शहद के समान मीठी और दोषनिवारक तथा चित्तरूपी भूमि पर सुख-शान्ति की वर्षा कर के उस को हरा-भरा करने वाली वाणी ही बोलनी है, तो फिर निसन्देह उस के जो सुखद परिणाम होने चाहियें, वे अवश्य होंगे तथा वे दोनों उन को देख-देख कर कृतकृत्य होंगे ।

ऋग्वेद मं० १० सूक्त ८५ का ४४ वाँ मन्त्र है, जिस में नारी को उपदेश दिया गया है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमना सुवर्चा ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

हे नारि ! सर्वरक्षक प्राणाधार दुःखविनाशक, सुखस्वरूप सब सुखों के देने हारे उस परमपिता परमेश्वर की अनुकम्पा से तू पति की कभी भी हिंसा न करना । मुख से कड़वे बोल आदि अन्य नाना प्रकारों से हिंसा करने की बात तो दूर रही तू तो सदा अघोरचक्षुः रहना अर्थात् अपनी आँखों में भी क्रोध के कारण कभी लाली मत आने देना । इतना ही नहीं, तू तो इस से भी आगे बढ़कर सुमनाः-सुन्दर मन वाली, तेजोमयी, वीरों को जन्म देने वाली बन, देवरों को भ्रातृसम घर परिवार में विद्यमान रखना चाहने वाली बन । फिर मुझे ही नहीं मेरे भाई-बहिनों को ही नहीं, मेरे माता पिता आदि को ही नहीं वरन् मेरे घर मे विद्यमान रहने वाले इन चोपाओं तक को भी अपने उत्तम शान्त मन से स्योना-सुख देने वाली और शिवा उनका कल्याण करने वाली बन ।

वेद के उपर्युक्त मन्त्र का यह उपदेश कितना सारगर्भित है कि वह 'अपतिघ्नी' हो-पति की कभी हिंसा न करने वाली हो-उस का हनन न करने वाली हो । इस का केवल इतना ही अभिप्राय नहीं है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह केवल बाह्य दृष्टि से ही हनन–हिंस न करने वाली हो, यहाँ तक कि उस का मन भी ऐसा अहिंसक हो जाए कि उस की आँखों में भी कभी फिर अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति क्रोध के कारण लाली न आने पाए। तभी तो उस को वेद में 'अघोर चक्षु' कहा गया है। यदि सचमुच वह वेद के इस मन्त्रानुसार 'सुमना'—सुन्दर मन वाली बन जायेगी तो फिर आँखों में क्रोध के कारण लाली आने की तो बात पृथक् रही वहाँ से तो फिर उल्टा स्नेह के स्रोत प्रवाहित होने लगेंगे। तब फिर वह केवल अपने पति के लिये ही नहीं वरन् उस के सब परिवार के सदस्यों के प्रति स्योन—सुखदायिनी बन जायेगी, शिवा–कल्याणकारिणी बन जायेगी। तब वह सहज ही सूनृता बन जायेगी, अर्थात् सब के प्रति उस के मुख से फिर सत्य और मिठास से युक्त वाणी प्रवाहित होने लगेगी। इसी सहज स्वाभाविक दिव्य व्यवहार को प्रभु घर परिवार में देखना चाहता है। तभी तो वेद के द्वारा वह हमें यह उपदेश देता है कि–"पत्नी पति के प्रति जब भी बोले तो वह शान्तिमयी मधुरवाणी से ही बोले। और ऐसा ही शान्त मधुर व्यवहार पति को भी पत्नी के प्रति सदा करते रहना चाहिये।

वेद ने दम्पती को–जाया-पति को यह आदेश, यह उपदेश क्यों दिया? इसलिये कि पत्नी-पति के इस व्यवहार का जहाँ उनकी आकृति और प्रकृति पर, उन की शक्ल और अक्ल पर, उन के बाह्य व्यवहार और आन्तरिक स्वभाव पर, उन के मन और मस्तिष्क पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है वहाँ इस का परिवार में आने-जाने वालों पर तथा विशेष कर आने वाली पीढ़ी पर–आने वाली सन्तति पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। नारी-नर के–जाया पति के इस शान्तिमय मधुरप्रिय व्यवहार से जो घर-परिवार का Invironment वातावरण बनता है वह बड़ा निराला होता है। बच्चे मूकरूप से इस से इतने प्रभावित रहते हैं कि उन के हृदयों में सहज ही अपने जननी-जनक-अपने माता-पिता के प्रति बड़ी श्रद्धा हो जाती है। जिस घर में ऐसा नहीं हो पाता वहाँ का वातावरण बहुत ही खराब रहता है जैसे एक घर में पति रात को घर लेट आया। पत्नी ने भोजन तो उनके लिये परोस दिया पर दाल सब्जी रोटी सब कुछ ठण्डा ही था। पति ने कहा—"यह भोजन तो बिल्कुल ठण्डा है, जरा गर्म कर दो।" वह पहले ही से गुस्से में थी, क्योंकि पति-देव आज बड़ी देर से आए। अतः क्रोध के कारण न तो अब वह स्योना–सुखदायिनी ही रह पायी और न ही शिवा–कल्याणकारिणी। इसलिये उस ने उत्तर दिया, "सुबह से, बीस बार तो चूल्हे में सिर दे चुकी, अब आप ही बताओ, ११ बजे हैं. आप को तो गप्पों से ही फुरसत नहीं, है कब तक चूल्हे में मैं आग फूकती रहूँ।" पति से भी अपनी त्रुटि को अनुभव करते हुए धैर्य और शान्ति पूर्वक चुप-चाप नहीं रहा गया। अतः वह बोला आगबबूला होकर कि "आग लगे ऐसे भोजन को, सारा दिन मेहनत करते हैं, इतने पर भी यदि गर्म भोजन नसीब नहीं, तो क्या यह कुछ जीवन है! यह लो अपनी रोटी, मैं होटल में चला जाता हूँ। अभी बारह-एक बजे तक तो वे खुले ही रहते हैं।" यह कहते हुए थाली को वह परे फैंक कर होटल की ओर चल दिया। नारी तो पहले ही घोरचक्षुः, अस्योना और अशिवा बनी हुई थी, अतः वह भी बोली, 'जहाँ आपकी मरजी हो भोजन खाओ, मुझे भी कोई यह भोजन बनाने का ही काम थोड़े है, और भी अनेकों मेरे काम हैं। सारा-सारा दिन ही यदि मैं चूल्हा फूंकती रहूँ तो फिर और कार्य कौन करेगा? यह सब कहती हुई यह तो सो जाती है और वह भी होटल में भोजन खाकर चुपचाप अपनी खाट पर आकर सो जाता है। इन के इस व्यवहार का इन के घर-परिवार के वातावरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी ही एक बहन ने मुझे कहा कि हमारी इस विकृत स्थिति को देखकर जब हमारा ही पुत्र हमें समझने लगता है और कभी कभी जब हमें यहाँ तक कहता है कि, 'माता जी! जब पिता जी नहीं मानते तो आप ही मान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाएँ या पिता जी !' यदि माता जी नहीं शान्त होती तो आप ही कम से कम शान्त हो जाइये ।'' तो ऐसे समय भले ही हम गुस्से में हों और कुछ का कुछ बोले जा रहे हों पर उस बेटे के सम्मुख भीतर ही भीतर हम अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे होते हैं इत्यादि ।

इस के विपरीत एक दूसरा घर है उस में भी गृहस्वामी जब लेट आता है तो झट नारी उठ कर उस को भोजन परोसती है । थोड़ा बहुत कुछ थाली में परोस कर शेष सब गर्म करने के लिये आग जलाती है, तो इतने में बच्चा जाग जाता है और रोने लगता है । वह झट बच्चे को गोद में ले लेती और तवे पर गर्म करने के लिये रोटी रखती है । उधर बचवा बराबर रोता जाता है । उस के रोने से माँ ने ऐसा अनुभव किया जैसे कि बच्चे के पेट में दर्द हो, तो वह झट घो लेकर जहाँ उस के पेट को मलती है वहाँ दूसरे हाथ से रोटी शाक आदि भी गर्म करती जाती है । तब तक पति को ठण्डी रोटी खाती हुए देखकर नारी कहती है, 'पतिदेव ! मेरा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हृदय से न चाहती हुई भी मैं आप को ठण्डो दाल रोटी खिला रही हूँ......।'' यह सुनकर पति बोला, 'देवी ! तेरा दोष नहीं, दोष तो मेरा है कि मैंने व्यर्थ की गप्पों में इतना समय गवाँ दिया और फिर ११ बजे के बाद ही मैं घर में आया फिर भी धन्य हैं आप, जो इतनी सरदी में भी बिस्तर से उठकर मुझे इतने स्नेह-सम्मान से भोजन करा रही हैं । फिर उधर बच्चे के पेट में दर्द है, अतः उस को भी मल रही हैं । सचमुच यदि मैं ही समय पर आ जाता और सब बच्चों के साथ मिल-जुल कर समय पर ही भोजन कर लेता तो फिर आप को भी नींद न खराब होती और मैं भी समय पर सोकर प्रातः समय पर उठ जाता और अपने दैनिक सन्ध्या हवन से निवृत होकर समय पर ही अपने कार्य पर जा सकने में सहज समर्थ हो सकता । खैर अब जो हो गया सो हो गया आगे मैं पुनः ऐसी भूल करने से बचने का पूर्ण प्रयास करूँगा ।

सचमुच जब जाया—पत्नी अपनी न्यूनता-कमी—त्रुटि को अनुभव करती हुई सुमना होकर—स्योना होकर—शिवा होकर जहाँ पति के प्रति शान्त एवं मधुमय वचन बोलती है तो वहाँ फिर पति भी अपने ही भीतर झांक-झांक कर अपनी ही न्यूनताओं को अनुभव करते हुए नारी के प्रति शान्त एवं मधुमय तथा सहानुभूति पूर्ण वचन ही बोलने लगता है । फिर इन दोनों के इस शान्त मधुर एवं प्रिय तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का घर परिवार के वातावरण पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है । यहाँ तक कि जिस नन्हे-मुन्ने बालक का पेट माँ मलती हुई पति की भोजन आदि द्वारा सेवा कर रही थी उस पर भी अनूठा ही प्रभाव पड़ता है । तभी तो वेद ने यह आदेश दिया, यह उपदेश दिया कि पत्नी पति के प्रति शान्तिमय मधुर वचन बोले और पति भी ऐसा ही व्यवहार करे ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जगद्गुरुशंकराचार्य का दर्शन—

—डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री
भूतपूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग डी. ए. वी कॉलेज देहरादून

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य अप्रतिम प्रतिभा–सम्पन्न अति सूक्ष्म दृष्टि के चिन्तक हुए हैं। वे दर्शनाकाश के देदीप्यमान सूर्य हैं। उनकी प्रतिभा, चिन्तन एवं प्रतिपादन शैली से प्रभावित होकर विश्व के सभी विद्वानों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसका कारण उनकी विलक्षण प्रतिभा एवं उनके दर्शन का अद्वितीय रूप है। दर्शन के क्षेत्र में ऐसा सूक्ष्म चिन्तक कोई अन्य विद्वान् नहीं हुआ है। अपनी अल्पावस्था में ही जो कार्य आचार्य शंकर ने कर दिखाया वह अन्य किसी दार्शनिक से सम्भव नहीं हो सका है। कहा जाता है कि आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया था और बारह वर्ष की अवस्था तक शेष सभी शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने वादरायण के सूत्रों पर गीता एवं दश प्रधान उपनिषदों पर भाष्य लिखा। दर्शन के क्षेत्र में इस को 'प्रस्थान त्रय' कहा जाता है। अपने परम गुरु गौडपादाचार्य की माण्डूक्य कारिका पर भी इन्होंने भाष्य लिखा। शंकराचार्य को शिव का अवतार कहा जाता है। अपनी विलक्षण दार्शनिक प्रतिभा के द्वारा इन्होंने एक ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना की है जो न तो एकदम भौतिकवाद है, न कोरा कर्मवाद और न शुष्क ज्ञानवाद। आचार्य शंकर का यह सिद्धान्त वैदिक धर्म एवं दर्शन पर आधृत अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। आचार्य शंकर का अद्वैतवाद कर्म और ज्ञान, स्थूल और सूक्ष्म के समन्वय का सिद्धान्त है। यद्यपि इस सिद्धान्त के बीज वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताओं, आरण्यक और उपनिषदों में विद्यमान थे, किन्तु उनके असमन्वित होने के कारण वैदिक दर्शन सुबोध्य नहीं था। महर्षि वादरायण ने औपनिषदिक दर्शन के सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध किया और आचार्य शंकर ने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना के साथ उन सूत्रों की समन्वित व्याख्या करके अद्वैतवाद का प्रतिपाद किया एवं उपनिषदों के विरोधी सिद्धान्तों में सामञ्जस्य स्थापित किया। उनकी यह समन्वयवादिता भारतीय–दर्शन के क्षेत्र में बेजोड़ है।

दर्शन–शास्त्र की दुरूहता प्रसिद्ध हैं, किन्तु आचार्य शंकर इसके अपवाद हैं। उन्होंने मूल्य ग्रन्थों पर भाष्य रचना के द्वारा साहित्य और दर्शन का संयोग करके दार्शनिक विषय को भी सरस एवं सरल बना दिया है। उनके भाष्य ग्रन्थों की शैली अति मनोरम एवं सुबोध्य है।

शंकराचार्य का जन्म––

आचार्य शंकर का जन्म केरल प्रान्त के 'कालटी' नामक ग्राम में हुआ था। कालटी को ही कालड़ी और कालादी भी कहा जाता है। केरल प्रदेश में कोचीन शेरामूर रेलवे लाईन पर 'आलवाई' नामक एक छोटा स्टेशन है। इस स्टेशन से दक्षिण की ओर कालटी लगभग पांच मील की दूरी पर स्थित है। शंकराचार्य के माता-पिता 'पल्नियूर' ग्राम के निवासी थे, परन्तु बाद में वे कालटी में आकर बस गये थे। इसी ग्राम में नम्बूदरी ब्राह्मण परिवार में ७८८ ई० में शिवगुरु के घर में शंकर का जन्म हुआ ऐसा माना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाता है। डा० के० बी० पाठक ने अनेक तर्कों के आधार पर शंकर का ७८८ से ८२० ई० स्थिति काल माना है। तीन वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता का निधन हो गया। आठ वर्ष की वयस् में ही इन्होंने संन्यास ले लिया। इसके पश्चात् काशी में निवास करते हुए इन्होंने विविध भाष्य एवं ग्रन्थों की रचना की।

शंकराचार्य की रचनाएं—

शंकराचार्य के नाम से बहुत सी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। यह निर्णय करना कुछ कठिन कार्य है कि इन रचनाओं में आदि शंकराचार्य की रचनाएं कौन सी है, क्योंकि शंकराचार्य ने देश के चारों भागों में चार मठों की स्थापना की थी। और उन मठों की गद्दी पर आसीन होने वाले व्यक्ति भी शंकराचार्य ही कहलाते रहे हैं। उनमें से बहुतों ने शंकराचार्य के नाम से ही ग्रन्थों की रचना की है। अतः यह निर्णय करना अति कठिन कार्य है कि प्रस्थान त्रयी के भाष्यों के अतिरिक्त जो ग्रन्थ शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं उनमें से आद्य शंकराचार्य के कितने हैं। इन सभी ग्रन्थों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१—भाष्य ग्रन्थ २—स्तोत्र ग्रन्थ ३—प्रकरण ग्रन्थ ४—तन्त्र ग्रन्थ।

१—भाष्य ग्रन्थ—भाष्य ग्रन्थ दो प्रकार के हैं (क) प्रस्थान-त्रयी—ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों के भाष्य और इनके अतिरिक्त इतर ग्रन्थ—विष्णु सहस्र नाम और सनत्सुजातीय पर भाष्य।

प्रस्थान त्रयी के भाष्य ग्रन्थ—

१—ब्रह्म सूत्र पर भाष्य - शंकराचार्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ब्रह्म सूत्र पर भाष्य है। इसकी शैली बड़ी ही परिमार्जित एवं प्राञ्जल है। इस प्रकार की भाषा, विशेषतः दर्शन ग्रन्थों में अन्यत्र मिलना कठिन है। ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय चार पदों में। इसमें इतर मतों का निराकरण करते हुए आचार्य शंकर ने वेद और उपनिषदों को आधार बनाकर अद्वैत सिद्धान्त की युक्तियुक्त स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र को ही बादरायण सूत्र, वेदान्त सूत्र एवं शारीरिक सूत्र भी कहते हैं।

२—गीता भाष्य—शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य द्वितीय अध्याय के ग्यारहवे श्लोक से प्रारम्भ किया है। इस भाष्य में उन्होंने गीता को ज्ञानपरक व्याख्या की है एवं तत्वज्ञान से ही मोक्षप्राप्ति सिद्ध की है।

३ - उपनिषद् भाष्य—शंकराचार्य ने (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तिरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण्य एवं (११) श्वेताश्वेतर—इन ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य लिखा है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतर ग्रन्थों पर भाष्य ग्रन्थ--

प्रस्थान त्रयी के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी शंकराचार्य द्वारा रचित भाष्य उपलब्ध हैं, परन्तु इनमें से कुछ को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। निम्न ग्रन्थ आचार्य शंकर के ही माने जाते हैं जिनमें (१) विष्णुसहस्रनाम (भाष्य) (२) सनत् सुजातीय (भाष्य)—धृतराष्ट्र के मोह को दूर करने के लिये सनत्सुजात ऋषि ने जो उपदेश दिया था, उसका वर्णन महाभारत में है। इस पर्व को 'सनत् सुजातीय' कहते हैं। अतएव इसका भाष्य सनत् सुजातीय भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) ललिता त्रिशती भाष्य—ललिता त्रिशती में ललिता माता के तीन सौ नामों का उल्लेख है। आचार्य शंकर ने इन भाष्य में इन नामों की व्याख्या उपनिषद् तथा तन्त्रों के प्रमाण के आधार पर की है।

(४) माण्डूक्य कारिका भाष्य – आचार्य शंकर के परम गुरु गौडपादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकाएं लिखी हैं। इन्हीं कारिकाओं के ऊपर आचार्य शंकर ने भाष्य लिखा है। यह ग्रन्थ अति महत्वपूर्ण है।

२—स्तोत्र ग्रन्थ—

आचार्य शंकर अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिष्ठा पक होते हुए भी व्यवहार में सगुण ब्रह्म उपासक थे। इसीलिये उन्होंने शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति प्रभृति देवताओं के सम्बन्ध में स्तोत्र एवं स्तुतियां लिखी हैं।' इन स्तोत्रों में साहित्यिक और दार्शनिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। इनमें गणेश स्तोत्र, शिव स्तोत्र, देवी स्तोत्र, विष्णु स्तोत्र, युगल देवता स्तोत्र आदि शंकर की चौंसठ प्रकाशित रचनाए हैं। वैसे मठों में प्राप्त हस्तलिखित स्तोत्रों को मिलाकर कुल संख्या दो सौ चालीस है। परन्तु शैली और प्रतिपाद्य विषय के अनुशीलन से सभी रचनाएँ आचार्य शंकर विरचित प्रतीत नहीं होती।

३—प्रकरण ग्रन्थ—

सर्वसाधारण को अद्वैत वेदान्त का परिचय कराने के लिये आचार्य शंकर ने कुछ प्रकरण ग्रन्थों की रचना ग्रन्थ में न करके श्लोकों में की है। वेदान्त तत्त्व के प्रतिपादक होने के कारण इन्हें 'प्रकरण ग्रन्थ' कहा जाता है। उपदेश साहस्री, तत्त्वबोध, पंचीकरण प्रकरण, विवेक चूड़ामणि आदि उनतालीस ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ आदि शंकराचार्य की भी हो सकती हैं।

४—तन्त्र ग्रन्थ—

प्रपञ्चसार और सौन्दर्य लहरी-ये दोनों ग्रन्थ तन्त्र के हैं और आद्य शंकराचार्य के ही माने जाते हैं।

भारतीय दर्शन को शंकराचार्य की देन—

वैदिक काल से लेकर आज तक दर्शन का चिन्तन-मनन किसी न किसी रूप में होता रहा है। इन सभी चिन्तकों ने भारतीय दर्शन को बहुत कुछ दिया है। परन्तु सभी दार्शनिकों में आचार्य शंकर का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने भारतीय दर्शन की आधार शिलाओं को इतना शक्तिशाली बना दिया है कि विश्व का दर्शन भारतीय दर्शन की तुलना में कहीं ठहरता नहीं है। उन्होंने कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की है जिनके बिना भारतीय दर्शन के स्थापित सिद्धान्त कुछ अपूर्ण से प्रतीत होते थे। शंकर का अद्वैतवाद एक महान् कल्पनात्मक साहस और तार्किक सूक्ष्मता का दर्शन है। इसका उग्र बुद्धिवाद, इसका कठोर तर्क मानव की आशाओं तथा विश्वासों के प्रति उपरामता का भाव लिये अपने मार्ग पर आगे बढ़ता चला जाता है। वेदान्त के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् थीबो ने कहा है—"शंकर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जो विशुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से सब प्रकार के धर्मतत्त्व सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा रोचक है, भारत की भूमि में उपजा हैं। वेदान्त के उन रूपों में से जो शंकर के मत से भिन्न दिशा में जाते हैं अथवा वेदान्त विपरीत दर्शनों में से कोई भी, जहाँ तक साहस, गाम्भीर्य तथा कल्पना की सूक्ष्मता का सम्बन्ध है, शास्त्रीय वेदान्त की तुलना में नहीं ठहर सकते।' सर चार्ल्स इलिएट के मत में 'शंकर का दर्शन संगति, पूर्णता तथा गाम्भीर्य में भारतीय दर्शन में सबसे प्रथम स्थान रखता है।' शंकर के ग्रन्थों को पढ़ते समय यह असम्भव है कि पाठक के मन में इस प्रकार का भाव उत्पन्न न हो कि वह एक ऐसे मस्तिष्क के सम्पर्क में आ गया है कि जो अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ गहराई में जाने वाला तथा अगाध आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। अपरिमेय विश्व के विषय में अपनी अत्यधिक उच्च भावना के कारण, आत्म सम्बन्धो गूढ़ तत्त्वों के प्रेक्षण के कारण, जिसे सिद्ध न किया जा सके उसके सम्बन्ध में न अधिक और न कम कथन करने का अविचल सकल्प रखने के कारण आचार्य शंकर मध्य-कालीन भारत के दार्शनिक चिन्तकों में एक तेजस्वी व्यक्तित्व रखते हैं। उनका दर्शन स्वयं में परिपूर्ण है जिसको न तो अपने आगे और न पीछे ही किसी अन्य सामग्री की आवश्यकता है। शंकराचार्य की अति विशाल किन्तु साथ ही अति सूक्ष्म चिन्तन धारा के भीतर के एक विशद तथा भावुक प्रवृत्ति की झलक मिलती है। अत्यन्त कठोर तर्क के ऊपर जहाँ आचार्य शंकर को पूर्ण अधिकार प्राप्त है, वहाँ दूसरी ओर उन्हें एक उत्कृष्ट तथा सजीव काव्य पर भी उतना ही अधिकार प्राप्त है। यद्यपि यह दर्शन से भिन्न प्रकार का विषय है उनकी प्रतिभा की किरणों ने विचारधारा के अन्धकारमय कोनों में भी पहुँचकर उन्हें प्रकाशित किया है।

दार्शनिक जगत् को शंकराचार्य की जो प्रमुख देन रही है, उसका स्वरूप निम्न प्रकार है—

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन (ख) माया का प्रतिपादन (ग) आचार सम्बन्धी विशेषताएँ (घ) कुछ अन्य देन।

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन——

अद्वैतवाद भारतीय दर्शन का महत्वपूर्ण अङ्ग है। भारतीय साहित्य में आचार्य शंकर के अद्वैतवाद से पूर्व भी इस सिद्धान्त का वर्णन जहाँ तहाँ मिलता है। संहिताओं में अद्वैत सिद्धान्त का पूर्ण वर्णन न मिलने पर भी अद्वैतपरक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। उपनिषदों में तो इस सिद्धान्त के स्पष्ट रेखाचित्र मिलते ही हैं। बौद्ध दर्शन में माध्यमिक तथा योगाचार भी अद्वयवादी ही थे। साहित्य क्षेत्र में महाकवि भवभूति ने अपने उत्तरराम चरितम् नाटक में भी वितर्कवाद के सहारे अद्वयवाद का ही संकेत दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परन्तु आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद का निरूपण एक नवीन पद्धति से किया था। इनका यह अद्वैतवाद 'केवलाद्वैतवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अद्वैतवादों में शिव शक्ति, शून्य तथा विज्ञान किसी न किसी को अवश्य स्वीकार किया गया है परन्तु आचार्य शंकर एक ब्रह्म को ही अद्वैत सत्य मानते हैं। शंकर अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवस नापरः'—ब्रह्म सत्य है, अनन्त है और ज्ञान रूप है। ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जगत् और जीव की द्वैतानुभूति का निराकरण करके एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करके अद्वैतवाद की स्थापना की है। ब्रह्म, जगत् और जीव की द्वैतावस्था का भान तभी तक रहता है जब तक कि पारमार्थिक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता। इस भेदबुद्धि एवं प्रपञ्च की सत्य प्रतीति का कारण अध्यास है।

अध्यास—

अध्यास सब प्रकार के प्रपञ्च का मूल कारण है। यह अध्यास नैसर्गिक है। अध्यास मिथ्या ज्ञान रूप है। और कर्तृत्व, भोक्तृत्व का प्रवर्तक है। किसी पदार्थ में उससे भिन्न पदार्थ का आरोप ही अध्यास है। इसे आचार्य शंकर ने अविद्या भी कहा है। रस्सी में सर्प का मिथ्या ज्ञान ही आरोप है। अध्यास अर्थात् अविद्या के द्वारा ही रस्सी सर्प के रूप में भासित होती है। परन्तु अविद्या निवृत्ति के पश्चात् रस्सी का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। यही बात ब्रह्म रूप सद्वस्तु और संसाररूप असद्वस्तु के सम्बन्ध में भी विचारणीय है। स्वयं प्रकाश, चेतन, आनन्दस्वरूप ब्रह्म परमार्थ वस्तु है और प्रपञ्च रूप दृश्यमान समस्त जड़ पदार्थ समूह अवस्तु है। ब्रह्मरूप वस्तु के ज्ञान होने पर जगत् रूप अवस्तु का भ्रम दूर हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त का सार है। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन विवर्तवाद के सिद्धान्त के आधार पर किया है।

विवर्तवाद—

तात्त्विक परिवर्तन को विकार तथा अतात्त्विक परिवर्तन को विवर्त कहते हैं। दही दूध का विकार है, परन्तु जगत् को ब्रह्म का विकार नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में जो सत्य और असत्य के रूप में भिन्नता है वह दही और दूध के सम्बन्ध में नहीं है। इसलिये वह जगत् ब्रह्म का विवर्त है, विकार नहीं।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद का मूलाधार तीन प्रकार की सत्ताओं की परिकल्पना है। ये सत्ताएं-प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिब सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता है।

प्रातिभासिक सत्ता—

प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार प्रतीतिकाल में असत्य वस्तु सत्य भासित होती है। परन्तु बाद में इस असत्य वस्तु का बाध हो जाता है। शुक्ति-सीप में रजत—चाँदी की प्रतीति प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार ही है। बाद में सीप का ज्ञान होने पर चाँदी की प्रतीति का निराकरण हो जाता है। यही बात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रस्सी और साँप के दृष्टान्त में भी है। साँप और रस्सी आदि का प्रातिभासिक ज्ञान भी निराधार नहीं होता। साँप का आधार रस्सी है और चाँदी का आधार सीप।

व्यावहारिक सत्ता—

जगत् के समस्त पदार्थों की सत्ता व्यावहारिक है। जगत् के व्यावहारिक पदार्थ केवल व्यवहार में सत्य हैं। परमार्थ दृष्टि से ये सब मिथ्या हैं। ब्रह्म का ज्ञान होने से पूर्व ही व्यावहारिक जगत् की सत्य प्रतीति होती है। इसी अवस्था में समस्त लौकिक व्यवहार सत्य प्रतीत होते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक सत्ता की स्थापना के द्वारा आचार्य शंकर ने लौकिक व्यवहार की वास्तविकता की रक्षा की है।

पारमार्थिक सत्ता—

ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक है। यह सत्ता ही एकान्त रूप से सत्य है एवं तीनों कालों में अबाधित रहती है। ब्रह्म–भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में विद्यमान रहता है। पारमार्थिक सत्ता अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर प्रातिभासिक एवं व्यावहारिक सत्ताओं का बाध हो जाता है। पारमार्थिक सत्ता ही अद्वैत सिद्धान्त की पोषक है। इस प्रकार पारमार्थिक सत्ता के द्वारा आचार्य शंकर ने अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की है। जिस प्रकार ब्रह्म से पृथक् जगत् की सत्ता अविद्याजन्य है, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भेद भी अविद्याजन्य ही है।

जीव—

अन्तः करण समन्वित चैतन्य जीव कहलाता है। वस्तुतः शुद्ध ब्रह्म ही अज्ञान की उपाधि के संयोग से जीव रूप से विद्यमान रहता है। शरीर तथा इन्द्रिय समुदाय के ऊपर शासन करने वाला और कर्म के फलों का भोगने वाला यही जीव है। यह चैतन्य स्वरूप है। जीव अविद्या के वश में होकर शरीर और इन्द्रियों के साथ अभिन्नता प्राप्त करके शरीरादि के दुःख का भोक्ता है। इसलिये अविद्या के दूर होने के पश्चात् जीव ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' जिस प्रकार जल में दिखायी पड़ने वाला सूर्य का प्रतिविम्ब जल के अनुसार ही रूप ग्रहण करता है। जल में कम्पन आने पर सूर्य के प्रतिविम्ब में भी कम्पन आने लगता है। परन्तु बिम्बस्थानीय सूर्य स्वतन्त्र रहता है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्म भी वस्तुतः विकारहीन एवं एकरूप है।

शंकराचार्य ने विवर्तवाद, अध्यास तीन प्रकार की सत्ताएं एवं जीव सम्बन्धी सिद्धान्तों के आधार पर अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त की स्थापना की है। इन सिद्धान्तों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का स्वरूप नितान्त मौलिक एवं तर्क के आधार पर प्रतिष्ठित है।

माया का प्रतिपादन—

मायावाद का सिद्धान्त अद्वैतवेदान्त का मूलभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के विना अद्वैत सिद्धान्त की पुष्टि असम्भव है। यही कारण है कि मायावाद के सिद्धान्त से पूर्व भारतीय–दर्शन में अद्वैत की विचारधारा की पुष्टि न हो सकी। आचार्य शंकर ने मायावाद के सिद्धान्त को स्थापित करके भारतीय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शन की अद्वैत विचारधारा को सुपुष्ट बना दिया है। उन्होंने अविद्या एवं जगत् मिथ्यात्व के रूप में मायावाद के सिद्धान्त का विकास किया है। उन्होंने माया को ब्रह्म की अविद्यात्मिका बीज–शक्ति कहा है। अग्नि की अपृथक्भूत दाहक शक्ति के समान ही माया ब्रह्म की अपृथक्भूता शक्ति है। माया के स्वरूप निर्धारण के सम्बन्ध में आचार्य शंकर का कथन है कि न वह सत् है और न असत्। यदि माया सत् होती तो उसका ब्रह्मज्ञान के पश्चात् बाध न होता। इसके विपरीत माया को असत् भी नहीं कहा जा सकता। यदि माया असत् होती तो उसकी प्रतीति भी नहीं होती। व्यावहारिक जगत् की प्रतीति माया की सत्यता को भी प्रमाणित करती है। इस प्रकार माया परमार्थ सत् एवं अलीक असत् से विलक्षण होने के कारण प्रातीतिक रूप सत् है। यही माया का अनिर्वचनीय स्वरूप है। एक ही ब्रह्म माया के कारण अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। विद्यारण्य स्वामी के शब्दों में 'स्पष्ट रूप से भासित होने पर भी जिसका निरुपण न किया जा सके वही माया है।'

आवरण ओर विक्षेप नामक्क माया की शक्तियाँ—

आचार्य शंकर ने माया की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ मानी हैं। माया की आवरण शक्ति के द्वारा आवृत जीव अपने आपको सांसारिक विषयों का कर्त्ता, भोक्ता आदि समझने लगता है और अविद्या के नष्ट होने के पश्चात् कर्तृत्व और भोक्तृत्व की वासना का भी विनाश हो जाता है।

माया विक्षेप शक्ति के रूप में समस्त प्रपञ्च रूप जगत् की जननी है। जिस प्रकार अज्ञान के द्वारा रस्सी में सर्प की भावना हो जाती है. उसी प्रकार माया के द्वारा अज्ञान से आवृत आत्मा में अज्ञानी के लिये सूक्ष्म शरीर से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त आकाशादि प्रपञ्च की उद्भावना हो जाती है। परन्तु जब जीव माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है तो उसे सर्वत्र ब्रह्म की ही सत्ता प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी ब्रह्मरूप हो जाता है।

शंकराचार्य के दर्शन की आचार सम्बन्धी विशेषताएँ—

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति पारमार्थिक है। आचार्य शंकर ने पारमार्थिक सत्ता के साथ जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्थापित करके वेदान्त दर्शन की पलायनवादी होने से बचा लिया है। व्यावहारिक जगत् की सुखमय स्थिति एवं चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उनके दर्शन का आचार सम्बन्धी दृष्टिकोण विश्व समाज को नितान्त उपयोगी देन के रूप में प्राप्न है। आचार सिद्धान्त वेदान्त का ही एक अंग है। आचार्य शंकर का आचार सिद्धान्त ज्ञान और कर्म तथा व्यवहार और परमार्थ का समन्वय है। उन्होंने राग-द्वेष युक्त सकाम कर्म का खण्डन करके निष्काम कर्म को महत्त्व दिया है। निष्काम कर्म चित्त शुद्धि के द्वारा जीव को मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। राग-द्वेष का त्याग करके शुभ भावना से धर्माचरण करने वाला व्यक्ति देव कहलाता है। इसके विपरीत स्वभाव सिद्ध राग-द्वेष से धर्मा–चरण करने वाला व्यक्ति असुर कहलाता है। यह देवकर्म एक ओर तो आध्यात्मिक प्राप्ति का साधन है तो दूसरी ओर सुखी आदर्श समाज का प्रस्थापक। जहाँ सकाम कर्म का अनुष्ठान मनुष्य को पशुत्व की ओर ले जाता है, वहाँ निष्काम कर्म मानव को सुर में परिणत कर देता है। इस प्रकार शंकराचार्य का निष्काम कर्म ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार का सुख प्रदान करता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कुछ अन्य देन—

इन सबके अतिरिक्त भी आचार्य शंकर ने भारतीय दर्शन को कुछ और दिया है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वैदिक धर्म को फिर से स्थापना की। इसके अतिरिक्त, दार्शनिक उत्थान एवं धर्माचरण के निमित्त भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना करके जो वातावरण उत्पन्न किया है, वह दार्शनिक जगत् के लिये परम हितकर सिद्ध हुआ है। तान्त्रिक उपासना के क्षेत्र में आचार्य ने जिस पद्धति का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है। भगवती त्रिपुर सुन्दरी के अनन्य उपासक शंकराचार्य ने श्रीविद्या के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह विलक्षण है। उन्होंने इस विषय का प्रतिपादन 'सौन्दर्य लहरी' एवं 'प्रपञ्च सार' नामक ग्रन्थों में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। आचार्य शंकर अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे जिन्होंने अपने सूक्ष्म चिन्तन से भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद की स्थापना करके उसे परमोन्नत गौरव प्रदान किया।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गतांक से आगे—

सृष्टि और उसकी उत्पत्ति—

—डा०रामेश्वर दयाल गुप्त M.A. P.H.D.

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

(ऋ० १०।१२९।५)

(एषां) इन (तीनों=ईश्वर जीव और प्रकृति) की (रश्मिः) किरण (तिरश्चीनः, विततः) तिरछी फैली हैं। (अधः, स्वित्, आसीत्) नीचे भी थीं और (उपरि, स्वित्, आसीत्) ऊपर भी थीं। (रेतोधाः) वीर्यधारक (जीव) (आसन्) थे और (महिमानः, आसन्) वे महान् थे। (अवस्तात् स्वधा) इधर प्रकृति थी (परस्तात् प्रयतिः) परे प्रयत्न (ईक्षण का बल) था।

भावार्थ :—प्रकृति जब कार्य रूप में परिवर्तित हुई तो उस परिवर्तन के हेतु तीनों ईश्वर, जीव और प्रकृति थे। मंत्र में 'एषां' शब्द इनके लिये बहुवचन के रूप में है जिसका अभिप्राय यह है कि वह कम से कम तीन वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाताकुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य बिसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥

(ऋ० १०।१२९।६)

(अद्धाः, कः वेद) यथार्थ कौन जानता है (कः, इह, प्रवोचत्) कौन यहाँ कह सकता है कि (यह सृष्टि) (कुतः, आजाता) कहाँ से आई (कुतः, इयं, विसृष्टिः) और कहाँ से विविध प्रकार की सृष्टि हुई। (अस्य, विसर्जनेन) इसकी उत्पत्ति के (अर्वाक्) बाद (देवाः) देव (उत्पन्न हुये हैं) अथ, कः, वेद) इसलिये कौन जानता है कि (यतः आबभूव) जिससे (यह जगत्) बना।

अर्थात् सृष्टि बनने का आँखों देखा ज्ञान मनुष्यों को नहीं हो सकता; क्योंकि सब सृष्टि उत्पन्न हो जाने के बाद उत्पन्न हुये हैं।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदिवादधे यदि वा न ।
योअस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंगवेद यदि वा न वेद ॥

(ऋ० १०।१२९।७)

(यतः, इयं, विसृष्टिः) जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि (आबभूव) उत्पन्न हुई (यदि, वा, दधे, यदि, वा, न) वह उसे धारण करता है या नहीं। (परमे, व्योमन्) असीम आकाश में (अस्य, यः अध्यक्षः)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसका जो अधिष्ठाता है (सः, अंग, वेद, यदि, वा, न) वही जानता होगा तो जानता होगा। यहाँ स्पष्ट किया है कि यह स्थापना बुद्धि-जन्य है। प्रत्यक्ष पर आधारित नहीं है। अब प्रथम मंत्र देते हैं जिसमें प्रश्न का उत्तर है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नभः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

(ऋ० १०।१२९।१)

(तदानीं) उस समय (प्रलयावस्था में) (न, असत्, आसीत् न असत्=स्थूल जगत् था। (नः, सत्, आसीत् न सत्=सूक्ष्म जगत्=सूक्ष्म भूत था। (रजः न आसीत्) न अन्तरिक्ष था (तत्, परः, व्योमा) यह जो पर आकाश है, नहीं था। (उस समय) कुह–कहाँ (किम्) क्या (आवरीवः) ढका हुआ था? (कस्य शर्मन्) किसके आश्रय (सुख) के लिये? (गहनं गम्भीरम्) अगाध और गहन (अंभः) अंभ=पञ्चभूतों का समीपवर्ती कारण (किम्) कहाँ था।

भावार्थ—कारण प्रकृति के सिवा, उसका कोई भी विकृत रूप महाप्रलयावस्था में नहीं था। पञ्चभूतों के प्रादुर्भूत होने से पहले जो उनका निकटवर्ती कारण रूप है उसे अंभ या जल कहते हैं।

इन मन्त्रों का ग्रिफिथने यों अंगरेजी अनुवाद किया है –

(१)

There whs neither non-reality nor reality then : There was no air nor sky Which is belyond it- What covered in and where ? and whose was the shelter :

Was water there, fathomless and deep ?

(२)

Death then existed not, nor life emmortal, Neither of night nor of day was there anysign, Theone breathed ouless by se'f impulse A part fromit was nothing what-so-ever.

(३)

Darkness was there, concealed in darkness, [Prakriti was there concealed in pralaya] And all this was hidden an indiscriminate chaos; The one that lay hidden dy void and formless. lm anifested Himself through His greatness nad might.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(४)

In the beginning there was Kama, The primal seed of the mind.

The sages searching in their hearts with wisdom. Foun kinsbip between existence and non-existence.

(५)

Their rays s'anted out and traversed Wonderfully below and above. There were seeds of life, mighty forces, Sustaining power below and forward Movement beyond.

(६)

Who verily knows, and who can here declare it – Whence was it born and whence came this creation ?

And did the shining ones appear with its production ?

But, then, who knows whence it has arisen ?

(७)

He, from whom this creation came into being, Whether He upheld it or He did not. He who oversees it in the eternal region, He verily knows it, or perpaps He does not know.

इन मन्त्रों में दो प्रकार के पदार्थ बताये हैं—

१—जो सृष्टि उत्पत्ति के समय नहीं थे—	२—जो पदार्थ सृष्टि उत्पत्ति के समय थे—
सत्–अभाव	अवात एकम्—one unimsoeble
असत्–कर्य जगत्	— ऊपर
अजः–भूगोल (Globes)	स्वधा—प्रकृति—वा Energy (नीचे)
व्योम–Firmament	तमस्—अन्धकार
मृत्यु–	अप्रकेतं सलिलं—Fluid
अमृत–	आभूः—आकाश से घिरा पदार्थ ।
अह्नः]	रेतोधः : जीवन बीज धारक
रात्र्या] दिन रात	महिमानः—मुक्त जीव
प्रकेतः]	प्रयात—Impulse
	संचारक शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह सृष्टि तपसः महिमाऽजायत—तप से पैदा हुई ऊपर प्रभु था नीचे प्रकृति। बीज रूप से जीव (भोक्ता तथा मुक्त थे।)अब इन प्रतिज्ञाओं का आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की भित्ति पर देखते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि हमारा सूर्य उष्णतम गैस का महान् पिण्ड है। सामान्य अन्तरिक्षीय स्थितियों में यह गैस द्रव अथवा ठोस से कम घनी है। यह 'सत्' है। किन्तु सूर्य के केन्द्रीय प्रदेश में दस बिलियन वातावरणों के अत्यधिक भार के कारण यह गैस पारे के घनत्त्व से छः गुनी घनी हो जाती है। सूर्य का औसत घनत्त्व से १ ४१ गुना अधिक है। ऐसा घनत्व रखने वाली गैस न ही 'सत्' है और न 'असत्'। अतः मन्त्र का कथन वैज्ञानिक हष्टि से पूर्णतः शुद्ध है।

इस प्रकार सूर्य की गैसें न सत् है न असत्, किन्तु सूर्य और तारे ऐसी गैसों से बने हुए हैं। प्रारम्भ में सम्पूर्ण तत्त्व सम्पूर्ण आकाश में समान रूप से विभाजित था। इसका औसत घनत्व पानी के घनत्व से ०,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,११.२—२२ गुना था। इस तत्त्व को क्या कहा जाये, सत् या असत् ? गैस या द्रव ? कोई ऐसा नहीं कह सकता। वैज्ञानिकों ने इस पदार्थ का नाम यलेम' 'YLEM' रखा है। मन्त्र में इसे 'अम्भस्' कहा है जो सार्थक है जब कि 'यलेम' निरर्थक है। शब्द की अज्ञात तरगें ध्वनि कहाती है, इन्हीं को 'अम्भस्' कहते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने शब्द और आकाश को सम्बन्धित माना है, जो आधुनिक विज्ञान को अब मान्य हुआ है।

मन्त्र में प्रश्न किया है कि 'किसने क्या वस्तु ढांकी' इसका भाव यह है कि प्रकृति अवस्था से सृष्टि अवस्था तक आने में बहुत कम समय लगा। आधुनिक वैज्ञानिक कहते है कि सृष्टि के प्रारम्भ के पश्चात् आणविक प्रतिक्रियाओं के परिणाम स्वरूप, समस्त मूलतत्त्व केवल आधा घन्टे में उत्पन्न हो गये। (गैमो कृत बर्थ ऐंड डेथ आफ सन) आधा घण्टा का समय विश्व के निर्माण में नितान्त तुच्छ काल है। इस प्रकार मन्त्र का यह भाग पूर्णतः शुद्ध है।

'कुह कस्य शर्मन्=कहाँ किसके आश्रय में, किसके हितार्थ ?—यह प्रश्न इस आधुनिकतम युग में अब भी अनुत्तरित है।

दूसरे मन्त्र वक्तव्य कि 'तब न मृत्यु थी, न अमृत'—पूर्णतया सत्य हैं क्योंकि उस समय सूर्य और पृथ्वी के न होने के कारण जीवन नहीं था।

'रात और दिन का चिह्न भी उस समय नहीं था—क्योंकि जब तक सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह न हों, दिन-रात हो नहीं सकते।

'एक तत्त्व प्राणयुक्त था'—यह वक्तव्य आधुनिक मस्तिष्क को बड़ा धक्का लगाने वाला है। यह आधुनिक विज्ञान से पूर्णतः मेल खाता हैं—"वहाँ पर तारे श्वास ले रहे हैं अर्थात् उनके तल की पर्तें ऊपर उठती हैं और नीचे गिरती हैं।" यह तत्त्व श्वास ले रहा था—अपनी निजी शक्ति से प्राणयुक्त था'- इस सम्बन्ध में गैमो कहते हैं —

(क्रमशः)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दूर कर के हर बुराई को भलाई दीजिये—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० अ० ३० मं० ३ ॥

इस मन्त्र का ऋषिः —नारायण, देवता सविता और छन्दः—गायत्री है। यह मन्त्र महर्षि स्वामी दयानन्द को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता है तभी तो यजुर्वेद का भाष्य करते हुये प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में सर्व प्रथम इसी को लिख कर अपना भाष्य आरम्भ करते हैं। आइये इस मन्त्र पर थोड़ा विचार करते हैं।

अन्वयार्थ :—(सवितः देव !) हे सब जगत् को उत्पन्न करने वाले तथा उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले दिव्य गुणों के भण्डार परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि परासुव) तू हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण-दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर और (यत् भद्रम्) जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत् नः आसुव) वह हमें चहु ओर से प्राप्त करा।

इस मन्त्र में उपासक प्रभु से प्रार्थना करता है, हे सविता देव ! तू हमारे सभी दुरितों को दूर कर और जो भद्र है, वह हमें प्राप्त कराईये।

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वे होते हैं जो संसार की इन बुराईयों को बुराईयाँ ही नहीं मानते। उनका कहना यह है कि ये सब कर्म तो मनुष्य के स्वाभाविक कर्म हैं। अतः इनके करने में कोई पाप नहीं है, बुराई नहीं है। दूसरे वे लोग हैं जो इन दुर्गुणों को तो दुर्गुण मानते हैं और यह भी अनुभव करते हैं कि इन दुर्गुण दुर्व्यसनों के कारण ही हमारा निरन्तर पतन हो रहा है। वे यह भी मानते हैं कि हमारे दुःखों का कारण भी यही दुर्गुण ही हैं, परन्तु ऐसे व्यक्ति हृदय से चाहते हुये भी इन दुर्गुण दुर्व्यसनों से अपने को पृथक् नहीं कर पाते हैं। वे यह भी जानते हैं, कि ये दुर्गुण दुर्व्यसन ऐसे नहीं है कि जिनसे पृथक् नहीं हुआ जा सके; क्योंकि उन्होंने संसार में ऐसे महापुरुष देखे हैं जो इन दुरितों से ऊपर उठे हुये हैं और इससे वे हमारी अपेक्षा अधिक सुखमय, शान्तिमय जीवन व्यतीत कर रह हैं। ये हैं देवजन–उत्तम जन, जिन्होंने अपने को इन दुर्गुणों से पृथक् करके अपने को सुखी शान्त और पवित्र बनाया है।

इस प्रकार ये मध्यम कोटि के मनुष्य जो इन दुर्गुणों के कारण अपने को हीन अनुभव करते हैं वे इस अवस्था से ऊपर उठने के लिये देवों का-उत्तम मनुष्यों का आश्रय भी लेते हैं। उन से उन को निरन्तर धैर्य, सान्त्वना और उत्साह भी मिलता रहता है। इस वे निरन्तर ऊपर उठते रहते हैं। परन्तु उन के जीवन में एक दिन ऐसा भी आ जाता है कि जिन को देख कर वे समझते थे, कि ये दूध के धुले हुये ही नहीं अपितु गुणों के भण्डार भी हैं, उन में भी उनको शनैः शनैः दुर्गुण भासने लगते हैं। तब तो उन को उन से भी घृणा सी हो जाती है और फिर वे उन से भी आगे बढ़ कर उस देवाधिदेव परमेश्वर का आश्रय लेते हैं जिस की कृपा से वे देव दिव्य और पवित्र हुये थे या महान् बने थे। यह वह देव है जिसमें अपवित्रता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का लेश भी नहीं है, सब प्रकार से यह दिव्य है, द्युतिमान् है ज्योतिर्मय हैं। इस देवाधिदेव की कृपा से ही सब देव ज्योतिर्मय हैं, द्युतिमय हैं। यह देव पवित्रतम है। इसी का सम्पर्क पाकर सब पवित्र बनते है। अतः हमें भी इसकी शरण में जाना चाहिये और अपने आपको पवित्र बनाने का प्रयास करना चाहिये।

इस प्रकार वह परम देव-प्रकाशमय प्रभुदेव का सच्चा उपासक बन जाता है। उसे उस की शरण में जाकर पूर्ण विश्वास हो जाता है कि अब मेरे सब दुरित दूर हो जायेंगे। हृदय की सब कालिमा धुल जायगी। इस देवाधिदेव प्रभुदेव के सम्पर्क से मैं भी देव बन जाऊँगा।

उस परमदेव से वह प्रार्थना करता है—"हे देव ! तू हमारे सब दुरितों को दूर कर और जो भद्र है, वह हमें प्राप्त करा।" उपासक को ज्ञात है कि ये दुरित ही हैं जो मुझे इस जगत् में दुर्गति-दुरवस्था को प्राप्त कराते रहते हैं। अतः वह दुर्गुणों से बचने के लिये पूर्ण प्रयत्न करता है। और फिर वह उस प्रभुदेव से प्रार्थना भी करता है। तभी तो उसके दुर्गुण धीरे-धीरे दूर होते जाते हैं। अब ज्यों-ज्यों उस के दुर्गुण दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों वह निर्मल–पवित्र होता चला जाता है।

अब प्रश्न यह है कि दुरित क्या है ? और हम इसे कैसे-कैसे पहचानें ? तो इस का उत्तर यह है कि जो यह दुरित शब्द है, इसी में ही यह व्याख्यात है कि दुरित क्या है। दुरित=दुः+इत, दुः=दुख, इत=प्राप्ति, अर्थात् जिस कार्य के करने के पश्चात् परिणाम में हमें दुःख की प्राप्ति होती हो वह दुरित है। इस प्रकार जिस भी कार्य के करने से परिणाम में हमें दुःख मिले, हमारी दुर्गति हो, वह दुरित हुआ। अब वह चाहे अध्ययन हो, खाना हो, पीना हो, सोना हो, जागना हो, चलना हो, फिरना हो, बात करना हो, चोरी करना हो या सीना जोरी करना हो, कुछ देना हो आदि आदि।

इस प्रकार अत्यधिक स्वाध्याय भी यदि परिणाम में हमें आँखों की ज्योति के और शारीरिक स्वास्थ्य आदि से वंचित करे तो वह भी दुरित है, भले ही वह वेद शास्त्रादि का स्वाध्याय ही क्यों न हो। और यदि स्वल्प स्वाध्याय भी हमारे जीवन का अंग बन कर हमें शरीर से स्वस्थ, मन से शान्त तथा आत्मा से तृप्त करने वाला है तो वह सुपरिणामी होने से भद्र है।

(क्षीर) खीर दुरित है यदि अत्यधिक सेवन करने पर हमें परिणाम में वह कष्ट दे, और वही हित, मित और ऋतरूप में सेवन करने पर सुपरिणाम वाली होकर भद्र भी हो सकती है।

उपासक यहाँ उन सभी प्रकार के दुर्गुण दुर्व्यसन और दुष्ट आचारों से बचना चाहता है जिन के परिणाम में उसे दुःख मिलता है। इस में वह देवाधिदेव परमेश्वर की साक्षी में चलता है, प्रयत्न करता है और साथ साथ प्रार्थना भी करता रहता है। उस पवित्रतम प्रभुदेव से उसे निरन्तर उत्साह मिलता रहता है। उस के नेतृत्व में अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म दुर्गुण भी उसे ऐसा भासने लगता है कि वह दंग रह जाता है। हम अपने कमरे में बल्ब जलाते हैं और उसमें हर वस्तु जैसे स्पष्ट दिखाई देने लगती है, वैसे ही उसे अपने अन्दर की प्रत्येक बुराई भासने लगने लगती है। ज्यों ज्यों वह उन बुराईयों को दूर करता रहता है त्यों-त्यों वह निर्मल होता हुआ उस परमदेव परमेश्वर की कृपा का पात्र बनता चला जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह उपासक प्रभुदेव से प्रार्थना करता है। "हे दिव्य देव! मेरे सब दुर्गुण दूर करो।" क्योंकि उपासक जानता है कि दुर्गुण, बुराई या छिद्र एक भी शेष रह गया, तो भले ही वह कितना भी छोटा ही क्यों न हो, वह छोटा सा छिद्र भी जैसे शनैः शनैः घड़े को रिक्त कर देता है वैसे ही उसका वह छोटा सा दुर्गुण भी उसे शनैः शनैः सद्गुणों से रिक्त कर मिट्टी में मिला सकता है। अतः वह प्रार्थना करता है-'मेरे सब दुर्गुण दूर कर।' इस प्रकार उपासक सब दुर्गुणों की निवृत्ति चाहता है। तभी तो वह उस परमदेव की शरण में जा बैठता है जो स्वयं सब प्रकार के दुर्गुणों से दूर रहता है और अपनी शरण में आये हुये को भी दुर्गुणों से दूर कर देता है। वह देव दुर्गुणों से दूर कर देता है। वह देव दुर्गुणों से दूर ही नहीं है अपितु सद्गुणों का भण्डार भी है और वह अपनी शरण में आने वाले को भी सद्गुणों से अलंकृत कर देता है।

भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है, "हे प्रभो! बहुत से दुरित ऐसे होंगे जो मुझे तो दुरित नहीं दीखते हैं पर होते वास्तव में वे भी दुरित ही हैं। परन्तु तू उन्हें जानता है और मैं नहीं जानता। अतः ऐसे भी सब दुरितों को दूर कर जो मेरी दृष्टि में दुरित नहीं पर तेरी दृष्टि में दुरित ही हैं। तभी तो हे परमदेव! मैं तेरी शरण में आया हूँ। क्योंकि तेरी शरण में रह कर ही सर्वविध दुर्गुणों से मैं मुक्त हो सकूँगा।"

"हे देव! (यत् भद्रं तत् नः आसुव) जो भद्र है वह हमें प्राप्त करा।" उपासक 'भद्रं' कहकर एक वचन में यह एक वस्तु मांगी। परन्तु इस एक भद्र में भक्त ने कुछ छोड़ा नहीं। भद्रता भलाई एक भी यदि जीवन में आ जाय तो वह हमें भद्र-भले लोगों की श्रेणी में ला खड़ा कर देती है और बुराई एक भी यदि जीवन में आ जाए तो वह हमें अभद्रों की पंक्ति में खड़ा कर देती है। इसके अतिरिक्त जैसे एक बुराई अन्य भलाईयों के लिए रास्ता खोल देती है, तभी तो अन्य भलाईयां स्वयमेव आना आरम्भ कर देती हैं। जैसे जो मनुष्य चोरी करना आरम्भ कर देगा, उस के जीवन में झूठ-मिथ्या भाषण स्वयमेव आना आरम्भ हो जायेगा। चोरी करने वाला स्वभावतः अन्धकार प्रिय हो जायेगा। वह न्याय की बात करने वालों को शत्रु और रिश्वत लेकर अन्याय पूर्वक अपने को बचाने वालों को अपना मित्र समझता जायेगा इत्यादि।

इसी प्रकार यदि कोई अपने जीवन में एक भद्रता ले आता है, जैसे कि वह सोच ले, 'मैं किसी को अन्तःकरण से दुःख नहीं दूंगा, तो वह कभी असत्य भाषण नही करेगा, किसी से छल नहीं करेगा, गाली नहीं देगा क्योंकि वह जानता है कि इन कर्मों के परिणामस्वरूप दूसरों का दिल दुःखी होता है। इतना ही नहीं बल्कि वह इसके विपरीत प्यार से बोलेगा, शिष्टाचार से बोलेगा, सेवा करेगा, सहायता करेगा, क्योंकि ये कर्म अगले को दुःखी नहीं करते बल्कि और अधिक सुखी करते हैं।

इस के अतिरिक्त 'भद्रम्' शब्द यद्यपि है तो एक वचन में, पर इस एक वचन वाले 'भद्र' शब्द में भक्त ने सब कुछ मांग लिया। 'भद्र' शब्द 'भदि कल्याणे सुखे च' इस धातु से बनता है जिसका अर्थ होता है कि 'जिस के करने से इस संसार में सुख मिले और इस संसार से विदा हो जाने पर कल्याण होवे, वह भद्र कहलाता है।' भक्त प्रभु से तभी तो प्रार्थना करता है—'यत् भद्रं तत् नः आसुव' कि "जो भद्र हो वह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमें प्राप्त करा। अर्थात् हमें उस गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ की प्राप्ति करा जिस के परिणाम स्वरूप हमें अभ्युदय और निःश्रेयस, इन दोनों की प्राप्ति हो।"

उपासक इस मन्त्र में उस प्रभुदेव से इतना नैकट्य अनुभव कर रहा है कि शिष्टाचार की मर्यादा को तोड़ कर प्यार में विभोर हो कर वह कह रहा है कि "हे प्रभुदेव ! तू सब दुरितों को दूर कर और जो भद्र है उसे प्राप्त करा।" उपासक यहाँ इतने विशाल हृदय वाला बन गया है कि प्रभु भक्ति में विभोर होकर भी स्वभाव वश अन्यों को नहीं भूलें, इसलिये तो उसने प्रार्थना की कि "प्रभुदेव ! तू सब के दुरितों को दूर कर और हम सब को भद्रता की प्राप्ति करा।"

इस मन्त्र में 'देव' शब्द के साथ एक दूसरा सम्बोधन दिया हुआ है। वह यह कि जहाँ प्रभुदेव उपासक की दृष्टि में पवित्रतम है, दिव्यतम है वहाँ वह सविता भी है। 'सविता' शब्द 'षु प्रेरणे' (तुदादि गण) इस धातु से बनता है। वह प्रभु देव उत्तम गुण कर्म स्वभावों की सब को प्रेरणा देता है। उसी की प्रेरणा से प्रेरित हुए मनुष्य धीरे-धीरे देव बन जाते हैं, दिव्य बन जाते हैं, पवित्र बन जाते हैं। तब वे दिव्य देव प्रभु के प्यारे बन कर उस के परम प्यार–मोक्षानन्द के पात्र बन जाते हैं।

उस सविता देव की प्रेरणाओं को जिसने हृदय से अर्थात् श्रद्धा से सुनना आरम्भ कर दिया तो समझ लो कि वह तर गया। उसका लोक भी बन गया और परलोक भी बन गया।

वह हमें प्रेरणा क्यों देता है ? क्योंकि वह हमारा जनक है, उत्पन्न करने वाला पिता है वा उत्पन्न करने वाली माता है। [1]'सविता' शब्द 'षुञ् अभिषवे' तथा 'षुङ् प्राणिगर्भविमोचने' इन धातुओं से बनता है। वह जगत् को उत्पन्न करता है। अतः सब की जननी और जनक है अर्थात् माता और पिता है। यदि कोई कहे कि हमें उत्पन्न करने वाले तो हमारे ये माता पिता हैं, तो यह नियम है कि जो जिसके उत्पन्न करने वाले होते हैं, वे उसके सम्बन्ध में यह जानकारी रखते हैं कि वह वस्तु कैसे बनी है। यदि हम अपने इन माता पिताओं से पूछते हैं कि —"जब आपने हमें उत्पन्न किया है, तो बताओ हमारी आँख की पुतली का निर्माण आपने कैसे किया है ?" यह सुनकर वे मौन हो जाते हैं अथवा बड़े धैर्य से वे उत्तर देते हैं कि–हे प्रिय वत्स ! वास्तव में हम तुम्हारे जनक नहीं हैं, तुम्हारा वास्तव में सच्चा जनक और जननी तो वह सविता देव ही है। उसी ने तुमको उत्पन्न किया है। अतः वही जान सकता है कि यह आँख की पुतली कैसे बनी है।"

वास्तव में जो जिस वस्तु का उत्पन्न करने वाला होता है उस की रुचि भी उस के साथ सदा बनी रहती है। इस संसार में एक बालक यदि गन्दा होता है तो प्रायः सभी यह देखते हुए, जानते हुए भी यह कहते हुए आगे निकल जाते हैं कि 'यह बालक बहुत गन्दा हैं', पर उसे कोई साफ नहीं करता। अब अगर उस की जननी और जनक को यह भान हो जाय तो वे वहाँ से तब तक टल नहीं सकते जब तक कि वे उसे

---

१ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥   अथर्व २०.१०,८२ ॥ ऋग्वेद ८.१०.१० ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साफ न कर देंगे या नहला-धुला न लेंगे आदि-आदि । ठीक इसी प्रकार वह देव सविता भी हमें उत्पन्न करने वाली माता है, पिता है। अतः वह हमें प्रेरणा देता है ताकि हम अच्छे साफ-सुथरे पवित्र बनें और जग में अच्छे लगें। परन्तु एक दिन ऐसा भी आ जाता है कि ये माता-पिता भी समझाते-समझाते हार जाते हैं, थक जाते हैं, निराश हो जाते हैं, यह सोच कर, कि ये मानते तो हैं नहीं, अतः इन्हें समझाना व्यर्थ है, इनके साथ माथा-पच्ची करना बेकार है। परन्तु जो इनसे भी महान् है, वास्तव में वह ही हमारा सच्चा जनक और जननी –, जिसे वेद की भाषा में 'सविता' कहते हैं। वह न ही हारता है, न ही थकता है और न ही कभी निराश होता है। जब ये माता पिता हार कर वानप्रस्थ आश्रम आदि में चले जाते हैं तब भी वह हर बुरे कार्य के करने पर अन्दर से भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करके सावधान करता रहता है और हर अच्छे कार्य पर अन्दर से आनन्द, उत्साह और निर्भयता प्रदान कर के आगे बढ़ने और ऊपर उठने की प्रेरणा देता रहता है। उस परम माता, परम पिता रूप सविता देव का इतना स्नेह और इतनी सहानुभूति है हम से कि जब तक पूर्ण पवित्र कर के हमें वह मोक्ष तक न पहुँचा दे तब तक वह हमारे अन्तःकरण को धोने में संलग्न रहता है। इन जागतिक माता और पिता का धैर्य टूट जाता है पर उनका धैर्य नहीं टूटता। अतः उस (सविता वै देवानां प्रसविता1) देवों को भी उत्पन्न करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले 'सविता' देव का जितना भी धन्यवाद किया जाये उतना ही कम है। इस संसार में भी जो हमें नाना प्रकार के कष्ट एवं आपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं, वे भी वास्तव में हमारे कल्याण के लिये ही होती हैं, पर हम इन्हें समझ नहीं पा रहे होते हैं। एक बच्चा गन्दा होता है, नाहता नहीं है, कपड़े नहीं बदलता, तब माँ जबरदस्ती उसको पकड़ कर उस के कपड़े उतारती है, उस के सिर, हाथ, मुख और बदन आदि पर साबुन लगाती है ओर उसको रगड़-रगड़ कर धोती है तो तब वह बालक रोता है, चिल्लाता है, भागता है, पर नहा धो लेने पर जब माँ उसे साफ-सुथरे कपड़े पहनाती है, सुरमा डालती है, तेल लगाती है और फिर गोदी में लिटा कर दूध पिलाती है, तब उस बच्चे को दुरित-गन्दगी की निवृत्ति के उपरान्त अमृत रस का पान करने को मिलने पर वह चैन की नींद सो जाता है। उस समय उस को जो विश्राम और चैन मिलता है उसे वह ही जानता है। इसी प्रकार ये संसार की आपत्तियाँ एवं कष्ट रूप उस परम पिता परमेश्वर की रगड़ाई में जब हमारी सारी गन्दगी धुल जायेगी और हम साफ-सुथरे निर्मल और पवित्र हो जाएंगे तो, फिर केवल हम संसार में ही सुशोभित नहीं होंगे बल्कि प्रभु भजन में बैठकर उस सविता देव के अमृत रस का पान कर मोक्ष के–आनन्द के सच्चे पात्र बनकर परम शान्ति, परम आनन्द के भागी भी बन सकेंगे। अतः हमें इस संसार की आपत्तियों में भी यही समझना चाहिये कि वह परम जनक या परम जननी हमें रगड़-रगड़ कर धो रही है इसलिये कि हम साफ–सुथरे हों जायें, निर्मल और पवित्र हो जाएं तथा अपने लक्ष्य रूप भद्र=सुख और कल्याण को प्राप्त करें।



---

१ शतपथ १. १. २. १७.।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

में

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला

गुरुकुल प्रणाली ही एकमात्र समाधान—

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में ४ सितम्बर से ७ सितम्बर ८२ तक राष्ट्रीय वैदिक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें अनेकों विश्वविद्यालय के शिक्षाविदों ने भाग लिया। इस कार्यशाला में वैदिक शिक्षा एवं गुरुकुल प्रणाली के संदर्भ में आज की शिक्षा जगत् की विभिन्न समस्याओं के बारे में विचार किया गया।

इस कार्यशाला का सभारम्भ करते हुए सुप्रसिद्ध शिक्षा मनिषी डा० सत्यव्रत सिद्धान्तलङ्कार ने कहा कि आज से सौ वर्ष पहले मैकाले ने भी भारतीय पीढ़ी को अंग्रेजियत से सरोबार करने हेतु योजना बनाई थी। और मैकाले की पाश्चात्य शिक्षा के जवाब में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ८० पूर्व गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के द्वारा एक अन्य पाठविधि का आयोजन किया। आज हम इस कार्यशाला में प्राचीन वैदिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में आज की शिक्षा समस्याओं पर चिंतन करने एकत्रित हुए हैं।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा डा० माधुरी शाह का उद्घाटन भाषण भी पढ़ा गया। यद्यपि वे रूग्णावस्था के कारण इस समारोह में नहीं आ सकी। उन्होंने अपने सन्देश में लिखा भारत के नवजागरण के आन्दोलन में ऋषि दयानन्द का स्थान अद्वितीय है। उससे प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आज से ४० वर्ष पूर्व तक एक नई आशा और नई स्फूर्ति से गंगा नदी के तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। आज जब चहुँ ओर से हमें शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं ने घेर रखा है, वैदिक शिक्षा के आधार भूत मूल्यों पर अपनी शैक्षणिक समस्याओं का समाधान खोजना होगा। इस दिशा में यह कार्यशाला कुछ ठोस प्रस्ताव रख सके तो मैं समझती हूँ सम्पूर्ण शैक्षणिक समस्याओं का निदान हो सकेगा।

इस अवसर पर उदबोदान देते हुए मान्यवर कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने कहा आज हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति भटकाव के चौराहे पर है। कितने आश्चर्य की बात है कि उच्च संस्कारों का ऊँची शिक्षा एवं उपाधियों से कोई तालमेल नहीं रह गया।

इस अवसर पर बोलते हुए गुरुकुल के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने कहा आज पुनः हम अपना लेखा जोखा सामने रखे तथा वैदिक शिक्षा प्रणाली के मूल आधारों को अपनी शिक्षा प्रणाली में समाहित करें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस कार्यशाला में विभिन्न विश्वविद्यालय से आये शिक्षा वेत्ताओं के द्वारा ३२ निबन्ध प्रस्तुत किये गये। देहली, रुड़की, चण्डीगढ़, जबलपुर, रूहेलखण्ड, गुरुकुल आदि विश्वविद्यालयों से एकत्रित शिक्षा वेत्ताओं की यह आम राय थी कि शिक्षा का आदर्श छात्र का सर्वतोमुखी विकास किया जाना है। यह तभी सम्भव है जब गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आधार पर आचार्य शिष्य का प्रगाढ़ सम्बन्ध वैसा ही हो जैसा मां का अपने गर्भस्थ शिशु से होता है।

वैदिक शिक्षा से श्रेष्ठ मानव का निर्माण— दिनांक ५-६-८२

गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) ५-६ ८२ राष्ट्रीय वैदिक शिक्षा कार्यशाला के दूसरे दिन अनेकों वक्ताओं ने वैदिक शिक्षा प्रणाली की विशेषताओं को दिखलाते हुए यह सिद्ध किया कि जीवन के सर्वाङ्गीण पक्ष का विमोचन आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित वैदिक शिक्षा प्रणाली में ही निहित है। इस सत्र में श्री जगदीश विद्यालङ्कार तथा डा० निगम शर्मा ने वैदिक शिक्षा दर्शन पर अपने निबन्ध प्रस्तुत किये। इस अवसर पर विद्वज्जनों को सम्बोधित करते हुए डा० भवानीलाल भारतीय, अध्यक्ष दयानन्द शोधपीठ, पंजाब विश्वविद्यालय ने वैदिक शिक्षा पर आर्य समाज के प्रयोग का ऐतिहासिक दिग्दर्शन प्रस्तुत किया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बड़े भावपूर्ण तरीके से आचार्य शिष्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गुरुकुल में आचार्य शिष्य का सम्बन्ध इतना निकटता पूर्ण होता है जैसे माँ अपने पुत्र को गर्भ में रखती है। आचार्य शिष्य का यह सम्बन्ध ब्रह्मचर्य सूक्त में मिलता है।

स्थानीय शिक्षा वेत्ताओं ने भी सक्रिय रूप से इस कार्यशाला सत्र में भाग लिया। इस कार्यशाला के सायंकालीन सत्र के विषय आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा का महत्त्व पर प्रमुख वक्ता के रूप में बोलते हुए जबलपुर विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि डा० एम० एल० पुरोहित ने गुरुकुल शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का दिग्दर्शन कराते हुए कहा की आज कि शिक्षा प्रणाली को बदलने हेतु भारत को एक नये श्रद्धानन्द की आवश्यकता है। आज शिक्षावेत्ता शिक्षा की मूल समस्याओं के निराकरण हेतु गुरुकुल शिक्षा की ओर देख रहे हैं। इस सत्र में डा० आर० एल० वार्ष्णेय एवं डा० क्रान्तिकृष्ण ने भी भाग लिया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री ने कहा कि आज की प्रणाली का एकमात्र विकल्प गुरुकुल शिक्षा से ही है।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के तीसरे दिन का टैगोर, अरविन्द और गांधी के शिक्षा दर्शन और प्रयोग से सम्बधित था। इस विषय पर डा० हरगोपाल सिंह, डा० भारत भूषण आदि ने अपने निबन्ध प्रस्तुत किये। प्रमुख वक्ता डा० जे० पी० आत्रेय अध्यक्ष दर्शन विभाग रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय का कहना था टैगोर की शिक्षा में बालक की जिज्ञासा के प्रति आस्था है, वहाँ अरविन्द के शिक्षा दर्शन में आत्म विज्ञान की शिक्षा को ही प्राथमिकता दी गई है, महात्मा गांधी की शिक्षा में सर्वतोमुखी विकास पर बल दिया गया है लेकिन ऋषि दयानन्द ने तो अपने शिक्षा दर्शन में जीवन के सभी मूल्यों एवं साधनों का आधार ब्रह्मचर्य को स्थापित किया तथा उनके अनुसार आचार्य शिष्य के अंतरंग सम्बन्धों से ही विद्यार्जन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार्य होता है। अध्यक्षीय भाषण करते हुए महात्मा आर्य भिक्षु जी ने कहा कि आज की पाठशाला में बच्चे को पढ़ाने नहीं भेजा जाता बल्कि बनाने भेजा जाता है। शिक्षा का उद्देश्य आज मात्र जीविका उपार्जन रह गया उसमें भी यह शिक्षा सफल नहीं है।

सायंकाल सत्र का विषय स्वामी श्रद्धानन्द का महान् शैक्षणिक प्रयोग था जिसमें डा० विनोद चन्द्र सिंहा ने गुरुकुल शिक्षा के इतिहास पर प्रकाश डाला। ओमप्रकाश मिश्र ने गुरुकुल शिक्षा की परिकल्पनाएं प्रस्तुत की। इस अवसर पर उपस्थित प्रमुख वक्ता डा० प्रशान्त कुमार वेदालङ्कार दिल्ली विश्वविद्यालय ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों का विवेचन करते हुए गुरुकुल कांगड़ी की उपलब्धियों के सम्बन्ध में सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। डा० गंगाराम ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि मैकाले की शिक्षा का एकमात्र जवाब स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल कागड़ी था।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के अन्तिम दिन के सत्र में विभिन्न शिक्षा चिन्तकों ने गुरुकुल शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त किया। इसी सत्र में एक अन्य विषय योग की प्राचीन पद्धतियां पर भी विचार किया गया। जिसमें डा० विजयपाल शास्त्री, डा० त्रिलोक चन्द तथा डा० विनोद चन्द ने भाग लिया।

आज के इस सत्र के प्रमुख वक्ता प्रो० रत्नसिंह अध्यक्ष दर्शन विभाग, मेरठ विश्वविद्यालय ने ऋषि दयानन्द के विचारों के आधार पर यह सिद्ध किया कि गुरुकुल शिक्षा के आधार पर ही श्रेष्ठ मानव का निर्माण सम्भव हो सकता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त के आधार पर कुछ वक्ताओं ने आचार्य शिष्य सम्बन्धों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री सम्पादक "शक्ति सन्देश" ने कहा कि चाहे जिस तरीके से शिक्षा की समस्याओं पर विचार करें समाधान हमें शिक्षा के वैदिक आदर्शों में ही परिलिप्त होता है।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के सायंकालीन सत्र का विषय 'वेदों में विज्ञान' में अनेक शिक्षा तिनिधियों ने भाग लिया जिनमें थे डा० वेदप्रकाश शास्त्री, डा० रामेश्वर दयाल गुप्त इत्यादि निबन्ध वाचन किया। प्रमुख वक्ता डा० श्रीमती पूनम सागर, मानविकी विभाग रुड़की विश्वविद्यालय ने अथर्ववेद में कृषि विज्ञान पर अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत किया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रसिद्ध वैदिक विद्वान नारायण मुनि जी ने वेद के मन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया कि वेद का विज्ञान सार्वभौमिक है। वेदों में विज्ञान के स्थान पर यह कहना ज्यादा सार्थक है कि वेद का विज्ञान मौलिक है जिसे मनुष्य अपनी बुद्धि से परिष्कृत करके आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्वेषण कर सकता है।

उपर्युक्त वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के ८ दिनो में लगभग ३२ निबन्धों का वाचन किया गया। इस कार्यशाला में सभी प्रतिनिधियों ने देश के शिक्षा जगत् के समक्ष उठती हुई ज्वलंत समस्याओं पर विचार मंथन किया। प्रतिनिधियों की अनेकों जिज्ञासाओं का प्रायः सभी सत्रों में प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रमुख विद्वानों द्वारा समाधान किया गया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस कार्यशाला ने वर्तमान शिक्षा के कलेवर को विशुद्ध करने हेतु संस्तुतियाँ दी। दिनांक ७-९-८२ को सायंकाल वैदिक शिक्षा कार्यशाला का समापन समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षक एवं कर्मचारियों को इस सफलता पूर्वक आयोजन के लिये धन्यवाद किया।

वैदिक शिक्षा कार्यशाला के निदेशक डा० जयदेव वेदालङ्कार ने कहा कि वैदिक शिक्षा कार्यशाला के समस्त शोध पत्रों एवं परिणामों को शीघ्रातिशीघ्र छपवा कर शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्रेषित किया जायेगा। यह एक स्मारिका के रूप में होगा, जिसमें शिक्षा जगत् की समस्त समस्याओं का निराकरण वैदिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जायेगा।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वर्गीय गुरुवर्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती (भूतपूर्व आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब)

बुद्धि की विलक्षणता

बनारस में एक बार जब स्वामी जी स्वयं ही वात्स्यायत-भाष्य पढ़ रहे थे तो निग्रह स्थान में पाठ की संगति नहीं लगी। गुरुवर्य भट्टाचार्य जी से भी वह पाठ दिखा कर समाधान चाहा, परन्तु उन्हें भी उस समय उस प्रसंग में कुछ सूझ न पड़ा। अन्ततः पं० मुकिराम जी (बाद में स्वामी आत्मानन्द सरस्वती) ने उसी स्थल पर अपनी बुद्धि के बल घोर परिश्रम किया और निश्चय किया कि कुछ स्थल छूटा हुआ है और वहाँ अपनी ओर से डेढ़ पंक्ति ओर लिखकर आगे के सारे पाठ की संगति लगा ली। एक वर्ष के पश्चात् एक पुस्तकालय की हस्तलिखित पुस्तक से वहाँ का पाठ मिलाया गया तो वह पंक्ति अक्षरशः मिल गई।

मानव धर्म

मानव धर्म—

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति, अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले हो जावें, परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे ॥

—ऋषि दयानन्द सरस्वती

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल फोन : ७७

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका



आश्विन–२०३९ | वर्ष–३४ | अंक–७
अक्तूबर–१९८२ | पूर्णांक–३३७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डा० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डा० जबरसिंह सैंगर (कुलसचिव)

विषय-सूची



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

आश्विन २०३९ वर्ष : ३४, अंक : ६

अक्तूबर १९८२ पूर्णाङ्क : ३३७

श्रुति सुधा

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इद् वहन्तः सं तदाशत ।। साम० ८७५ ।।

अन्वयः—ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततम् । प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि । अतप्ततनू आमः, तत् न अश्नुते । श्रृतासः इत् वहन्तः तत् समाशत ।

सं० अन्वयार्थः हे ज्ञान, आनन्द के स्वामी परमेश्वर ! तेरा पवित्र करने वाला स्वरूप फैला हुआ है, उस से प्रभु अर्थात् प्रभावशाली हुआ-हुआ तू हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गों में सब प्रकार से अभिव्याप्त हो रहा है। अतप्ततनूः—असयंमी शरीर वाला—अतपस्वी मनुष्य कच्चा है, अतः वह उस पावन प्रभु को नहीं पा सकता । परिपक्व उपासक ही उस को हृदय में धारण करते हुए उस को सम्यक् रूप मे प्राप्त होते हैं ।

अन्वयार्थः—([1]ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततम्) हे ज्ञान, अमृत-आनन्द के अधिपति प्यारे प्रभुवर ! तेरा पवित्र करने वाला ज्ञानरूप वा आनन्दरूप उपासक में सर्वत्र फैला रहा है, उस से (प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि) अत्यन्त प्रभावशाली हुआ-हुआ तू उपासक के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सब प्रकार से-सब ओर से अभिव्याप्त कर रहा है। परन्तु (अतप्ततनूः) जो अतप्ततनू है, अर्थात् जिस ने अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के द्वारा अपने शरीर को तपाया नहीं, अपने शरीर को पकाया नही, (आमः) वह कच्चा है, अपरिपक्व है, अतः एव (तत् न अश्नुते) उस ज्ञानस्वरूप-आनन्दस्वरूप ब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता । (श्रृतासः इत्) जो 'श्रृतास' अर्थात् परिपक्व हैं, जिन्होंने यम-नियम आदि व्रतों के द्वारा अपने आप को

१ "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० ३०१.८.१.१०]

श्रृतासः:- श्रृत्र पाके श्रृताः एव श्रृतासः (आज्जसेर सुक् इति सूत्रेण 'असुक' प्रत्ययः स्वार्थे भवति ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परिपक्व बना लिया है ऐसे तपस्वी संयमी उपासक ही (वहन्तः उस को अपने भीतर धारण करते हुए (तत् सम्-आशत) उस के उस ज्ञानस्वरूप–आनन्दस्वरूप प्रभु को सम्यक्रुपेण प्राप्त करते हैं ।

प्रभु वेद-ब्रह्माण्ड-वा आनन्द के अधिपति प्यारे प्रभु का पवित्र स्वरूप सर्वत्र सदा फैला रहता है, उस अपने पावन स्वरूप के द्वारा वह अत्यन्त प्रभावशाली हुआ-हुआ ही सब साधकों के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को आविर्भूत किये रहता है तभी तो सच्चे-सच्चे साधक महापुरुषों के अङ्ग-अङ्ग मे, रोम-रोम से पवित्रता के प्रवाह प्रवाहित होते रहते हैं । साधक को यह सब सहज ही अनुभव होता रहता है कि यह पवित्रता का प्रवाह उस प्यारे प्रभु की ओर से ही आ रहा है ।

जो अतप्ततनूः है–जिसने साधना के द्वारा अपने को साधा नहीं–तपाया नहीं–पकाया नहीं वह कच्चा–अपरिपक्व साधक होने से उस पावन प्रभु को नहीं पाता । जो साधना की भट्टी में तप चुका होता है वह ही उस पावन प्रभु को पाकर उस के आनन्द में विभोर रहता है ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुषों के वचन—

१—उपासना—

उपासना— जिस से ईश्वर में आनन्द स्वरूप में अपना आत्मा को मग्न करना होता है, उसको "उपासना" कहते हैं।

ईश्वर की उपासना किस रीति से करनी चाहिए, सो आगे लिखते हैं—

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन की शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें, तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भलि-भाँति से उस में लगा दें।

(महर्षि दयानन्द सरस्वती)

३—जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्य सेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।। विदुरनीति ३.५० ।।

बुढ़ापा रूप-सौन्दर्य को हर लेता है, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, असूया-दूसरों का उत्कर्ष न सह सकना धर्माचरण को, क्रोध शोभा को, अनार्य सेवा-दुष्टों की संगत और उनकी आवभगत शील को, काम-विषय वासना का वेग लज्जा को और अभिमान सब कुछ हर लेता है।

सज्जनों की कामना—

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ।। विदुरनीति ४.३२।।

हमारे कुल में कोई भी वैरी हो, राजा तथा मन्त्री दूसरों के धन का अपहरण करने वाले न हो, मित्रों के द्रोह करने वाले न हो, दूसरों का तिरस्कार करने वाले न हो, झूठ बोलने वाला न हो, पितृयज्ञ-देवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ करने से पूर्व कोई खाने वाला न हो।

४—अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूंनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।। गीता २.११ ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे अर्जुन ! तू शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और फिर पण्डितों के से वचन बोलता है परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके भी पण्डित अर्थात् बुद्धिमान् जन शोक नहीं करते।

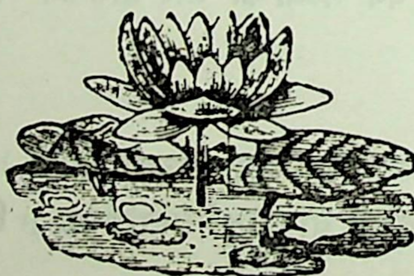
दहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्ति र्धीरस्तत्र न मुह्यति ।। गीता. २.१३ ।।

देही–आत्मा की इस देह अर्थात् शरीर में जैसे बाल्यावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही इस आत्मा को अन्य शरीर की प्राप्ति होती है । इस लिए शरीर विषय में धीरजन मोह नहीं करता।

५—तत्र तित्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ।। हितोपदेश ।।

हे मित्र वहां वास नहीं करना चाहिये जहाँ कि ये चार नहीं हो, ऋण देने वाला, वैद्य-हकीम-डाक्टर, विद्वान् और स्वच्छ जल की नदी वा जल का पर्याप्त प्रबन्ध जीवन सब कलाओं में श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जावन की भूमिका के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला के मूल्य का अधिकार है जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है !

—महात्मा गान्धी



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष चरितम्—

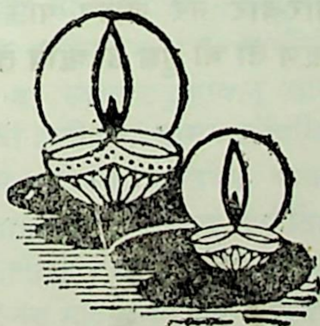
पटना में एक दिन एक मैथिल पण्डित स्वामी जी के पास आया और बड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत करता रहा। प्रसंगवश स्वामी जी ने भागवत का खण्डन आरम्भ कर दिया। इस पर उस पण्डित ने कहा कि स्वामी जी! आप कुछ भी कहें, परन्तु भागवत के अठारह सहस्र श्लोक हैं, ऐसे और श्लोक रचने की सामर्थ्य आज तक किसी दूसरे विद्वान् में तो नहीं हुई।

महाराज ने हँसकर कहा कि जैसे कल्पित कथा के अठारह सहस्र श्लोक भागवत में हैं वैसे ही कल्पित श्लोक हम अड़तीस सहस्र रच सकते हैं। नमूने की रीति से जूते और खड़ाऊ के प्रश्नोत्तर ही पहिले लिखिये। स्वामी जी ने अभी उसे दस श्लोक ही लिखाये थे कि वह उन श्लोकों के वचन-माधुर्य पर और पद विन्याय के लालित्य पर ऐसा लट्टू हुआ कि उसने महाराज के चरण पकड़ लिये। वह ब्राह्मण स्वामी जी की रचना शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ वहाँ से चला गया।

अजमेर में एक दिन व्याख्यान देते समय, स्वामी जी ने ढाई पुराने पन्ने उठाकर दिखाये और कहा कि मैंने अखिल आर्य्यावर्त्त में धनुर्वेद को खोजा परन्तु केवल ये ढाई पन्ने ही मिले। यदि मेरे जीवन की लड़ी बनी रही तो वेदों से धनुर्वेद का प्रकाश अवश्यमेव कर दूँगा।

जुए का आक्रमण (मुन्शीराम बाद में स्वामी श्रद्धानन्द)

हुक्का, शराब और मांस का व्यसन तो लग ही चुका था अब मद्य और मांस के साथी जुए ने भी अपना रंग जमाया। किसी ने झूठा बहम डाल दिया कि "जो मनुष्य जुआ नहीं खेलता वह दूसरे जन्म में गदहा बनता है।" गदहे की योनि से बचने के लिये मुन्शीराम ने जुआ खेलना शुरु कर दिया। परन्तु गालो-गलौज और गन्दी बोलचाल से उन्हें ऐसी घृणा हुई कि जुए के श्रीगणेश के साथ ही उसकी इति श्री भी हो गई।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्रद्धाञ्जलि

नादान लोगों ने उस योगी का भेद नहीं पाया ।



(१)

कोई कहे मत आ इस द्वारे । विष दाता कह पत्थर मारे ।
क्या जाने किस्मत के मारे । सुधा कलश ले आया ।। नादान० ।।

(२)

गाली देते नहीं लजाये । विष का प्याला लेकर आये ।
जोगी मेरा प्रेम दिवाना । विष का घूँट उड़ाया ।। नादान० ।।

(३)

रोम-रोम बन फोड़ा बोला । मेरा सेवा के कारण था चोला ।
खूब करी प्यारे ने लीला । उस का उसे चढाया ।। नादान० ।।

(४)

रोम–रोम बन फव्वारा । फूट पड़ी अमृत की धारा ।
एक बून्द ने नास्तिक मुनि का । सारा मोह बहाया ।। नादान० ।।

(५)

बार-बार नर जीवन पाऊँ । बार-बार बलिदान चढ़ाऊँ ।
ऋण तो भी मुझ से ऋषि तेरा । जावे नहीं चुकाया ।। नादान० ।।

(स्वर्गीय स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

—कैषा संस्कृतभाषा—

लेखक—प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु" प्राध्यापक वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

संस्कृतभाषा एषा सर्वासु विश्वभाषासु प्राचीनतमा इति समस्त भाषाशास्त्रविदां डिण्डिमघोषः भाषान्तरविलक्षणैर्विशिष्टैः प्रकृतिप्रत्ययादसंस्कारविशेषैः संस्कृतत्वादियं किल संस्कृतभाषेति अन्वर्थसंज्ञा लेभे। भाषा हि द्विविधा श्रवाणीभवति—प्राकृतभाषा संस्कृतभाषा चेति। तत्र केचन–प्रकृतिः संस्कृतं, तदागतं प्राकृतमिति व्यवतिष्ठन्ते। अपरे तु शुद्धसंकृतोच्चारणाक्षमाणां प्राकृतभाषैषा व्यत्वहारिकी भाषा इत्याचक्षते। विद्वच्छ्रेष्ठेन मार्कण्डेयमहानुभावेन स्वकीयप्राकृत सर्वस्वाख्ये ग्रन्थेऽस्याः प्राकृत भाषायाः भाषा–विभाषा- अपभ्रशं-पैशाची–भेदाच्चत्वारो भेदाः सूत्रिताः। सस्कृत भाषा तु पुनर्माधुर्यलालित्य–गाम्भीर्यादि–निखिलातिशायिगरिष्ठगुणगरिम्ना सर्वैः महता समारम्भेण समाद्रियमाणा समस्तसंसृतिवाङ्मयस्रजि मध्यममणिरिव विलसन्ती राराजते।

सर्वविदितमेवैतत् यत् संस्कृतं खलु दैवी वाणी। सेयं देवैर्विद्वद्भिः व्यवह्रियमाणत्वा द्देवभाषेत्युच्यते। "विद्वान्सो हि देवा" इति शतपथब्राह्मणस्योक्तिः। संस्करणैः संस्कृतत्वाच्च सैव संस्कृतमित्युच्यते। उक्तञ्च—

संस्कृतं हि दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।"
"भाषासु मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती॥"

सेयमन्वर्थसंज्ञा गीर्वाणवाण्या यत् संस्कृत भाषा देवभाषा वा नामेति। भाषणाद्धि भाषा भवति। भाष्यते भाषणादिव्यवहारोऽनुष्ठीयते यया सा भाषा इति तद्व्युत्पतेः। भाषा हि लोक व्यवहार निर्वहणसाधनेषु प्रधानभावं जुषते इति न तिरोहितं मतिमताम्। भाषाधीनो हि खलु सर्वोऽपि व्यवहारो लोकस्य। यद्यपिजना इङ्गितैस्तत्तदङ्गभिनयेन वा स्वान्तरङ्गभावान् तांस्तानाशयविशेषान् वा परत्र सङ्क्रमयितुं प्रभवन्ति यथाकथञ्चित् तथापि भाषां द्वारीकृत्य आशयमावेदयितुं यादृशी सौकरी, नैव तादृशी कराद्यवयवाभिनयेन विद्यते इति विश्वजनीनम्। तदेवम्, अन्तरेण भाषां नाणुरपि लोकव्यवहारो निष्पद्यते जगति इति निर्विशङ्कम्। तदिदं भाषाऽपरनामधेयं शब्दाह्वयं ज्योतिः सावित्रं ज्योतिरिव लोकयात्रायामस्माकं कियद्वा नोपकरोति इति तु वक्तव्यं नापेक्षते। भाषया अभावे न कथमपि सिध्येदस्याभिजातजानसमाजस्य लोकव्यवहार प्रपञ्चः। स्थान एवोक्तं ननु महाकविनामुना पदलालित्यधनिना दण्डिना—

"इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदिशब्दह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥"

निखिलेऽपि भूमण्डलेऽस्मिन् नास्ति तादृशः कश्चिदपि भूखण्डो यत्र जनसमाजेन नापेक्ष्यते भगवत्या भाषाया अनुग्रहः। भाषाऽऽलोकं विना कृत्स्नोऽपि लोकोऽन्धकारयमः सम्पद्यतेति प्रस्फुटम्। तस्माद्भाषा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपरिहार्या लोकव्यवहारनिष्पत्त्यर्थमित्यत्र तु प्रमत्तं विना कोऽन्यः संशयीत।

सा च पुनर्भाषा शब्दसंघातजन्या। शब्दसंघातश्च वर्णप्रकृतिकः। वर्णाश्चाज्झलक्षणाः। तदेषाम् अज्झलाञ्च स्वरव्यञ्जनापरनामधेयानां, सकलभाषा-बीजभूतानांभवतरणं कुत इति जाज्वल्यमानः प्रश्नः।

अस्माभिरुच्यते अज्झलामाविर्भावस्तावद् वेदादेवेति। तत्कथमिति चेदुच्यते—वेदादृतेनान्यत्र क्वचिदपितेषां दृष्टिगोचरता। वेदो हि भगवन्निर्मितिः। सृष्ट्यादौ परमकारुणिकः जगन्नियन्ता परमपिता परमात्मा अग्निवाय्वादित्याङ्गिरामहर्षिणां हृदयेषु ज्ञानं प्रणिददौ। तस्मादेव भाषा भाष्यमाणा दरीदृश्यते। शब्दार्थौ नित्यौ, सर्वदा सहस्थावेव भवतः। यथा प्राह कविकुलगुरुः कालिदासः –

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।"

आचार्यभर्तृहरिस्तु शब्दतत्त्वं ब्रह्मरूपेण निरूपयति। यथा—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन भावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ (वाक्य पदीये)
शब्दशक्तिस्तु परमात्मनोवरदानम्॥



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला में पठित निबन्ध

स्वामी दयानन्द का शिक्षा दर्शन--

—डा० भक्तराम–प्राध्यापक, पी० जी० डी० ए० वी० महाविद्यालय
नेहरू नगर, नई दिल्ली ६६

स्वामी दयानन्द एक वैदिक ऋषि थे। सूक्ष्म विचारक एव दूरदर्शी को ऋषि कहा गया है। जो धर्म अर्थात् मानव कर्त्तव्यों का अपने जीवन में साक्षात्कार कर लेता है। स्वामी दयानन्द ने सौ वर्ष पूर्व मानव हितार्थ जो विचार प्रस्तुत किये परवर्नी मनीषियों विद्वान् विचारकों एवं नेताओं ने चाहे वे भारतीय अथवा अन्य देशीय थे मुक्त कण्ठ से स्वीकार किये। ऋषि दयानन्द ने अपनी विचारधारा का मूल वैदिक एवं अन्य आर्य ग्रन्थों को रखा है जिनमें से उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार भी पूर्ण मौलिक हैं अथवा आर्य एवं भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुरूप है। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में कोई विदेशी पुष्ट नहीं तथापि मौलिक एवं उनके मस्तिष्क को उपज है। स्वामी जी कहते है "जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सकें वह शिक्षा कहती है। इस प्रकार स्वामी जी विद्या की प्राप्ति अविद्या का त्याग और उसका परिणाम–आनन्द को शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। पदार्थ का यथावत्–स्वरूप जानना उससे अपने व दूसरों को सुखी बनाना वह विद्या है, इससे विपरीत अविद्या है। उन्होंने आर्य समाज का एक नियम भी लिखा–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। स्वामी दयानन्द के मतानुसार शिक्षा का आरम्भ घर से, तत्पश्चात् विद्यालय है। बालक को शिष्टाचार सिखाना माता-पिता का कर्त्तव्य कहा है। एवं उदार चरित्र के सूत्र तथा अनेक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना आचार्य का कर्त्तव्य है।" (सत्यार्थ प्रकाश) साधारण भाषा का ज्ञान माता-पिता करायें। प्रथम मातृ भाषा पश्चात् अन्य देशीय भाषाएं। शुद्ध उच्चारण पर विशेष ध्यान दें। घर में बालक को शिक्षा न देने वाले अपनी सन्तान के शत्रु हैं। वे बालक को मनोवैज्ञानिक विधि से शिष्टाचार की शिक्षा दें। स्वामी जी के मत में माता पिता का धार्मिक होना आवश्यक है। वे घर में ही बालक को वैदिक एवं आर्ष ग्रन्थों के वाक्य और सूक्तियां अर्थ सहित कण्ठस्थ करा दें जिससे उनका बौद्धिक विकास उचित दिशा की ओर आरम्भ हो जाये। ऐसा होने पर विद्यालय में बालक स्वतः उन्नति करेगा एवं शिक्षक का मार्ग भी प्रशस्त हो जायेगा।

इसके अनन्तर विद्यालय की शिक्षा आरम्भ होती है। स्वामी दयानन्द ने अनेक वर्ष पूर्व अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता बताई। सच्चा साम्यवाद अथवा समाजवाद का सम्बन्ध शिक्षा काल से ही आरम्भ हो जाता है। ऋषि लिखते हैं—पाठशाला नगर से ५ पाँच मील दूर हो, सबको तुल्य वस्त्र खान-पान आसन दिये जायें। चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हों सबको तपस्वी होना चाहिये। राजनियम और जाति–नियम होना चाहिये कि पांचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे लड़के व लड़कियों को घर में न रखें, पाठशाला में अवश्य भेज दें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो इस प्रकार स्वामी दयानन्द के मत में शिक्षा अनिवार्य एवं समान होनी चाहिये। बालक-बालिकाओं का निवास आश्रम में ही हों इसी का नाम गुरुकुल है। (सत्यार्थ प्रकाश)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य की योग्यता के विषय में उन्होंने कहा–जो विद्यार्थियों को प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा पूर्वक विधि के लिये के लिये तन मन और धन से प्रयत्न करे उसको आचार्य कहते हैं (व्यवहार भानु)।। गुरुजन शिक्षा देते हुए विद्यार्थियों से कहें कि जो हमारे अन्दर उत्तम चरित्र हैं उनका अनुकरण करो हमारे बुरे कामों का अनुकरण न करो। जीवन में सत्य, तप, दम (मन को वश में करना) और शम का पालन करना। शिक्षण काल में भारतीय पुरातन परम्परा के अनुसार स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य अर्थात संयमी जीवन को अनिवार्य बताया है। इसका तात्पर्य आरण्यक या वनवासी जीवन नहीं। विद्या के साथ व्रत पालन भी आवश्यक है। व्रताभ्यास के बिना विद्याभ्यास व्यर्थ है। अतः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह. इन पांच नियमों का पालन विद्यार्थी के लिये आवश्यक कहा गया है। यदि कोई विद्यार्थी सम्पूर्ण विद्याध्ययन करने के पश्चात् अपने लौकिक जीवन में दुष्टाचारी है तो उसकी विद्या व्यर्थ है अतः इन्द्रियों को वश में रखना आवश्यक है।

इस प्रकार चारित्रिक विकास के बिना नाना विद्या विज्ञान प्राप्त कर लेना, आचार धर्म का पालन न करना स्वामी दयानन्द के मन में शिक्षा को निष्फल करना है। अतः वे अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनों को उच्च चरित्रवान् होना आवश्यक मानते हैं। वे लिखते हैं—आलस्य, अभिमान, नशा करना, मूढ़ता, चंचलता, व्यर्थ बातें करना, लाभ-लालच इत्यादि दोष विद्यार्थी में नहीं होने चाहिये। इसी प्रकार जिसको परमात्मा। और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान हो, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगो, सुख दुःखादि का सहन धर्म का नित्य सेवन करने वाला हो वह पण्डित (अध्यापक) कहाता है। (सत्यार्थ प्रकाश)

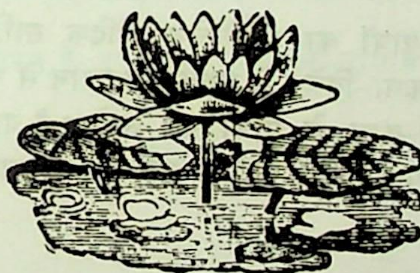
आचार्य ही बालक को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है वह उत्तम शिक्षा द्वारा उसको वाणी, चक्षु आदि इन्द्रियों एवं चरित्र को शुद्ध करता है धर्मानुकूल बनाता है। उसके मन एवं प्राण शक्ति को पुष्ट करता है। क्रूरता को दूर करता है, उसे राक्षसों दुष्ट पुरुषों से बचाता है। (वेद भाष्य)।।

शिक्षा के विषय अर्थात् पाठविधि के विषय में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण सर्वथा आर्ष है। वे अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ाने के विरुद्ध है। उनके मत में जितना ज्ञान अल्प समय में ऋषि–कृत ग्रन्थों के पढ़ने से सम्भव है उतना साधारण विद्वानों के ग्रन्थों से असम्भव है। व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, छः दर्शन, ग्यारह उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, चारों वेद आयुर्वेद, धनुर्वेद। राजनीति–शास्त्र

गान्धर्व वेद (संगीत) ज्योतिष शास्त्र, बीजगणित, अंकगणित, खगोल, भूगर्भ विद्या ये सब विषय पाठविधि में अध्ययन करने योग्य हैं। कन्याओं के लिये व्याकरण, धर्म वैधक, गणित, शिल्पविद्या अवश्य सीखनी चाहिये। उन्हें घर में गृहस्थ धर्म की भी शिक्षा दी जाये। (सत्यार्थ प्रकाश) राज्य की ओर से प्रबन्ध हो कि बालक विद्यालयों में विद्वान् परीक्षक एवं कन्या विद्यालयों में स्त्रियां परीक्षिका नियुक्त की जायें। किसी की भी सन्तान विद्या से रहित न रहें। पढ़ाने वाले विद्वान् भिन्न हों एवं मासिक परीक्षा लेने वाले विद्वान् दूसरे हों। तीव्र बुद्धि बालकों को विशेष परिश्रम से पढ़ाया जाये। इस प्रकार स्वामी दयानन्द शिक्षा में सुधार के लिये मासिक परीक्षा को आवश्यक मानते हैं। उन्होंने शिक्षा को यज्ञ स्वीकार किया है, केवल पुस्तक पढ़ने में समय बिताना नहीं। (वेद भाष्य) शिक्षा कार्य को उन्होंने दो भागों में बांटा है। एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राज्य के प्रबन्ध में तथा दूसरा वनियों के प्रबन्धों में। जिससे शिक्षा केवल सरकारी तन्त्र में न हो कर स्वतन्त्र भी रहे। वे प्रशासन द्वारा अध्यापकों को घनादि पदार्थ देकर सन्तुष्ट करना आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं (वेद भाष्य)। उनका कथन है कि जो सुशिक्षित, सुबुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, विविधविद्याओं का ज्ञाता तथा विद्वत् समाज में प्रिय हो वही शिक्षा विभाग का अधिष्ठाता अधिकारी, मन्त्री आदि होना चाहिये। अत्युत्तम सुशिक्षित जन ही विधान सभाओं के सदस्य, प्रधान पुरुष, राजपुरुष एवं राजा बनाया जायें। अतः शासन तन्त्र में उत्तम शिक्षा का महत्व है। वे सह-शिक्षा के विरोधी हैं उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में पाँच वर्ष का बालक और पाँच वर्ष की कन्या का भी एक दूसरे के विद्यालय में जाना निशेष किया है तथा वेद भाष्य में स्थान-स्थान पर बालक विद्यालयों में पुरुष अध्यापक एवं कन्या विद्यालयों में स्त्री अध्यापिका नियुक्त करने का आदेश किया है। वे शास्त्राध्यन के साथ जब तक विद्यार्थी जीवन है तब तक ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य समझते हैं। उनके विचार में बालक घर में न रह कर आचार्य–कुछ अर्थात् छात्रावास में हो रहें। विद्या समाप्ति पर हो घरेलू अर्थात् लौकिक जीवन से रखं जिससे धनी निर्धन का भेद विद्यार्थी जीवन में न रहे। जन्म की जांत-पांति का भी कोई प्रवेश न हो। उन्होंने आचार्य के लिये ब्रह्मचर्य जीवन का विधान किया है। बल्कि राजा एवं राजपुरुषों के लिये भी। अर्थात् वे शिक्षा के क्षेत्र में संयमी जीवन की आवश्यकता मानते हैं। (संस्कार- विधि) शिक्षा को परिणत क्या हो इस विषय में उनके विचार बड़े उच्च हैं।" विद्या समाप्ति के पश्चात् शिष्य अपने जीवन में सदा सत्य बोले, धर्म पर चलता रहे स्वाध्याय जो न त्यागे, सत्य, धर्म से पृथक् न हो। विद्वान् माता आचार्य अतिथि आदि का सम्मान करे। श्रेष्ठ कर्मों का आचारण एवं दुष्कर्मों का त्याग करे, श्रद्धा पूर्वक दान देता रहे। समय-समय पर सदाचारी विद्वानों को संग करता रहे। (सत्यार्थ प्रकाश)



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राम-साहित्य की व्यापकता—

—डा० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

राम-कथा भारतीय संस्कृति की अमर कथा है। बाल्मीकि के समय से अब तक राम-कथा में अनेक प्रकार के रूप देखने में आये हैं। भारत की प्रायः समस्त प्रमुख भाषाओं में राम-कथा समय-समय पर लिखी गई है। शायद ही कोई भाषा होगी, जिसको साहित्यिक गौरव प्राप्त हो और राम वृत्त का उससे संस्पर्श न हुआ हो। रामवृत्त के संस्पर्श से प्रत्येक भाषा अलकृत हुई है। राम कथा में भारतीय संस्कृति मुखरित हुई है। राम कथा अपने आप में अति व्यापक हो गया है और इस कथा ने अब वृहत् रूप धारण कर लिया है।

अतः राम साहित्य की व्यापकता का परिचय इस निबन्ध में दिया जा रहा है। बाल्मीकीय रामायण वास्तव में राम-कथा का मूल एवं प्रामाणिक आधार है। उससे पूर्व राम-कथा के पात्रों का उल्लेख-कथा के रूप में नहीं नामों के रूप में वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। अतः बाल्मीकि पूर्व राम-कथा की परम्परा को समझने के लिये वैदिक साहित्य में राम कथा का उल्लेख आवश्यक है।

वैदिक साहित्य में राम-कथा—

राम-कथा के अनेक पात्रों का नामोल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है, पर उनमें से किसी भी पात्र का किसी भी कथा-विशेष से अथवा आख्यान से सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। वैदिक-साहित्य में जहाँ कहीं भी राम-कथा के पात्रों का उल्लेख है वह प्रचलित राम-कथा से बिलकुल भी सम्बन्धित नहीं है। कोई भी पात्र हमारे सामने उस रूप में उपस्थित नहीं होता, जिस रूप में वह आज दिखायी देता है।

वैदिक काल में रामायाण की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथाएं प्रसिद्ध हो चुकी थी, इसका निर्देश समस्त वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नाम से मिलते हैं, इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी अवश्य प्रचलित थे।

बाल्मीकीय-रामायण में रामकथा—

राम-कथा की दृष्टि से बाल्मीकीय-रामायाण प्राचीनतम ग्रन्थ है। राम-कथा का समग्र एवं परिपक्व रूप इसी में सर्वप्रथम उपलब्ध है। प्राचीन भारतीय-परम्परा बाल्मीकि को आदि कवि और बाल्मीकीय-रामायण को आदिकाव्य मानती है। 'आदि काव्यमिदं त्वार्ष पुरा बाल्मीकिना कृतम्। बाल्मीकि कृत रामायण की रामकथा का महत्त्व देव कथा के रूप में नहीं मनुष्य-कथा के रूप में है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बाल्मीकि द्वारा नायक का चयन चरित्र तथा दुर्लभ गुणों के आधार पर मानव-समाज से किया गया था। बाल्मीकि कृत राम-कथा की मूल-प्रेरणा मानव मंगल की थी जो अन्तःप्रवाही करुण रस से परिपूरित शोक से श्लोक में परिणित हो गयी थी।

महाभारत में राम-कथा—

बाल्मीकि कृत रामायण के पश्चात् राम-कथा का विस्तृत रूप महाभारत में ही उपलब्ध होता है। रामायण और महाभारत दो उपजीव्य महाकाव्य माने जाते हैं। महाभारत में राम-कथा मुख्यतः चार स्थानों पर आयी है। रामोपाख्यान के रूप में भी राम-कथा का विस्तृत रूप महाभारत में आरण्यकपर्व में उपलब्ध है। रामकथा के अनेक पात्रों का उपमाओं के लिये यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में रामायण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भारताभि।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते ।। (६,६३)

महाभारत के आरण्यक पर्व में भीम कहते हैं कि हनुमान् रामायण में अति विख्यात है—

भ्राता मम गुणश्लाध्यो बुद्धिसत्वबलान्वितः।
रामायणेऽति विख्यातः शूरो वानरपुंगवः ।। (१४७, ११)

रामायणकार आदि कवि बाल्मीकि का महाभारत में तपस्वी महर्षि तथा भार्गव 1आदि के रूप में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। द्रौपदपर्व में एक स्थान पर कवि बालमीकि का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।२

इससे स्पष्ट है कि महाभारत के रचयिता बाल्मीकि-रामायण तथा रामकथा से भली-भांति परिचित थे।

महाभारत में राम के असामान्य लौकिक रूप के साथ-साथ अवतार रूप के भी अनेक प्रसंग आये हैं।

बौद्ध राम-कथा—

महाभारत के अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य में भी राम-कथा आयी है। ईसा के तीन सौ चार सौ वर्ष पूर्व रामकथा बहुत लोकप्रिय हो गई थी। इसी राम-कथा को बौद्धों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ढाल लिया। यह राम-कथा जातक साहित्य में सुरक्षित है। बौद्ध मतावलम्बी बोधिसत्व को राम का पुनरावतार मानते हैं। बोधिसत्व के असंख्य पूर्वजन्म की कथाएं जातकों में अनेक प्रचलित तथा लोकप्रिय कथाओं का भी समावेश हुआ है। रामकथा भी इसी प्रकार जातकों में प्रविष्ट हुई। बौद्ध जातक अपने मूल भारतीय पाठ में उपलब्ध नहीं होते। रामकथा सम्बन्धी तीनों बौद्ध जातक ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पाली भाषा में लिखे गये तिपिटक के दूसरे पिटक सुत्तपिटक के खुद्धक निकाय में मूलरूप में संग्रहीत माने

---

१ शान्तिपर्व ५७-४०। २ :११७, ४८।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाते हैं। दशरथ जातक को लेकर विद्वानों में बड़ी चर्चा हुई है। यह जातक ट्ढाण्णना पाया जाता है। यह जातक ट्ठवण्ठाना पाँचवी शताब्दी की एक सिंहली भाषा की पुस्तक का पाली अनुवाद है। दूसरा अनामक जातकम् चीना भाषा की लिये ऊत्सी किंग नामक पुस्तक में सुरक्षित है। तीसरा जातक दशरथ कथानम् ४७२ ई० स० में चीनी के त्स-पो-तिंग नामक त्रिपिटक भाषान्तरित रूप में समाविष्ट है।

बौद्ध साहित्य में राम-कथा उल्लिखित तीन जातकग्रन्थों में ही विशेषकर उपलब्ध है। आगे जाकर बौद्ध रामकथा की लोकप्रियता घट गयी। अन्य बौद्ध साहित्य में कहीं एकाध स्थान पर रामकथा के किसी एक पात्र अथवा प्रसंग का आधार लिया हुआ अवश्य उपलब्ध होता है।

जैन साहित्य में राम-कथा—

भारतीय रामकथा परम्परा का अत्यधिक विस्तृत रूप जैन-साहित्य में मिलता है। बौद्ध साहित्य की राम-कथा की अपेक्षा जैन-साहित्य की राम-कथा अपने विस्तार की विशेषता के साथ-साथ अन्य अनेक विशेषताओं को संजोये हुये है। बौद्ध महात्मा गौतम बुद्ध को राम का पुनरावतार मानते हैं। जैनाचार्य राम तथा राम-कथा के पात्रों को जैन मतावलम्बी चित्रित कर उन्हें अपने धर्म में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। राम, लक्ष्मण तथा रावण न तो केवल जैन मतावलम्बी है वरन् जैनियों के त्रिषष्ठि महापुरुषों में इन तीनों की गणना होती है। डा० कामिल बुल्के ने 'राम-कथा' में जैन-साहित्य की राम-कथा का बड़ा विस्तृत विवेचन किया है।

जैन राम-कथा की प्रमुख विशेषता है-रामचरित सम्बन्धी अलौकिक घटनाओं को लौकिक रूप में चित्रित करने का प्रयास। इसमें घटनाओं को तर्क संगत रूप में परिवर्तित कर चित्रित किया गया है।

जैन राम-कथा संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य भाषाओं में मिलती है। जैन राम-कथा गुणभद्र की राम-कथा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो केवल विमलसूरि की राम-कथा प्रचलित है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि और गुण भद्र दोनों की रामकथाएं प्रचलित है।

विमलसूरि की रामकथा परम्परा की अन्य मुख्य रचनाओं की सूची डा० कामिल बुल्के ने इस प्रकार दी है—

प्राकृत—

शीलाचार्य कृतचउपन्नमहापुरिसचरिय के अन्तर्गत राम-लक्खन चरियम्।
भद्रेश्वर कहावली के अन्तर्गत रामयणम्।
भुवन तुंग सूरिकृत सीयाचरिय तथा लक्खन चरि।

संस्कृत—

हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के अन्तर्गत जैन रामायण।
हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत सीता रावण कथानकम्।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिनदासकृत रामायण अथवा रामदेव पुराण।
पद्मदेव विजयगणिकृत रामचरित
सोमसेनकृत रामचरित
आचार्य सोमप्रभकृत लघुत्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित।
मेघ विजय गणिवरकृत लघुत्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित।

जिनरत्नकोषान्तर्गत उल्लिखित धर्म कीर्ति चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न पद्पुराण अथवा रामचरित्र।

ब्रह्मनेमिदत्त, शान्तिसूरि तथा अमरदास तीनों का सीता चरित्र।
हरिषेणकृत कथाकोषान्तर्गत रामायणकथानकम् तथा सीता कथानकम्।

रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोष
हरिभद्रकृत धूर्तायानम्
अमितगतिकृत धर्म परीक्षा

अपभ्रंश—

स्वयंभूदेवकृत पउमचरिउ अथवा रामायण पुराण।
रइधू (रइयू) कृत पद्मपुराण अथवा बलभद्रपुराण।

कन्नड—

नागचन्द्र कृत पम्परामायण या रामचन्द्र चरितपुराण।
कुमुदेन्दुकृत रामविजय चरित
देवचन्द्रकृत रामकथावतार
चन्द्रसागर वर्णाकृत जिनरामायण
गुणभद्र की रामकथा परम्परा की अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं—

संस्कृत – कृष्णदास कविकृत पुण्यचन्द्रोदय पुराण
प्राकृत – पुष्पदन्तकृत तिसट्ठी महापुरिस गुणालङ्कार
कन्नड़—चामुण्डरायकृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुष

पुराण—

वधुबमकृत जीवन संबोधन
नागराजकृत पुण्याश्रव कथासार

संस्कृत–साहित्य में राम–कथा—

बाल्मीकीय–रामायण तथा महाभारत के परवर्ती काल में संस्कृत–रामकथाएं अत्यधिक लिखी गई हैं। रामकथा की संस्कृत की रचनाएं ब्राह्मण राम-कथा पर ही अधिकतर आधारित हैं। कथावस्तु की दृष्टि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से इनमें कोई विशेषता नहीं है ये सब आदि-काव्य रामायण का ही अनुसरण करती है।

रामकथा से सम्बन्धित संस्कृत-साहित्य का सम्यक् अवलोकन उसे सामान्यतः दो भागो में विभक्त कर किया जा सकता है। हरिवंश आदि अनेक महापुराण योगवशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण आदि रामकथा का संस्कृत धार्मिक साहित्य है। इसके अतिरिक्त विविध काव्य, महाकाव्य नाटक आदि रामकथा के संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा—

संस्कृत के धार्मिक साहित्य में पुराणों का अपना एक निर्विवाद स्थान है। विविध पुराणों की रामकथा का विवरण इस प्रकार है—

(१) हरिवंश—हरिवंश पुराण में राम-कथा अति संक्षिप्त रूप में आयी है।

(२) विष्णु महापुराण—हरिवंश की रामकथा से कुछ अधिक प्रसंग विष्णु महापुराण में आये हैं। वैसे रामकथा का संक्षिप्त रूप ही इसमें उद्धृत हुआ है।

(३) भागवत महापुराण—भागवत महापुराण के अन्तर्गत आई रामकथा का अपना विशेष स्थान इसलिये है कि इसमें ही सर्वप्रथम सीता को लक्ष्मी का अवतार माना गया है।

(४) कूर्म महापुराण—बौद्ध तथा जैन रामकथा के समान कूर्म महापुराण में राक्षस वंश का वर्णन आया है। सूर्यवंश के वर्णन में राम-रावण युद्ध के पश्चात् राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख हुआ है।

(५) वाराह महापुराण—इस महापुराण में रामकथा पूर्णतः तो आई ही नहीं है, किन्तु एक स्थान पर दुर्जय द्वारा श्री रामस्तवन का उल्लेख है। एक और स्थान पर वसिष्ठ के परामर्श से दशरथ द्वारा राम द्वादशी व्रत के पालन करने का उल्लेख है, जिसके फलस्वरूप दशरथ के राम आदि पुत्र हुए।

(६) अग्नि महापुराण—इस महापुराण की राम-कथा बाल्मीकि रामायण के सात काण्डों का संक्षेप मात्र है।

(७) लिंग महापुराण—इस महापुराण के इक्ष्वाकु वंश वर्णन में रामकथा अत्यन्त संक्षेप में आई है।

(८) नारदीय महापुराण—इस महापुराण के प्रथम खण्ड एवं उत्तरखण्ड में संक्षिप्त राम-कथा दी गयी है।

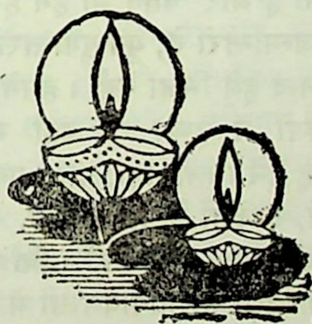
(९) वामन महापुराण—अपेक्षाकृत अर्वाचीन इस महापुराण में वेदवती तीर्थ के प्रसंग में रावण द्वारा अपमानित वेदवती का सीता के रूप में उत्पत्ति का उल्लेख है। इन महापुराणों के अतिरिक्त निम्न पुराणों में रामकथा आयी है—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१०-गरुड़ महापुराण
११-ब्रह्म महापुराण
१२–स्कन्द महापुराण
१३–पद्म महापुराण
१४–ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण
१५–विष्णुधर्मोत्तर महापुराण
१६–नृसिंह पुराण
१७–वह्नि पुराण
१८–शिव पुराण
१९–श्रीमद्देवी भागवत पुराण
२०–महाभागवत पुराण
२१–बृहद्धर्म पुराण
२२-सौर पुराण
२३–कालिका पुराण
२४–आदि पुराण
२५-कल्कि पुराण

साम्प्रदायिक रामायणों में रामकथा—

१-योगवासिष्ठ रामायण—योगवासिष्ठ रामायण सम्वादात्मक है। वसिष्ठरामचन्द्र सम्वाद में वसिष्ठ राम को मोक्षप्राप्ति पर विस्तार से उपदेश करते हैं। यह संवाद बाल्मीकी ने अरिष्टनेमि को सुनाया था। यही संवाद योग वासिष्ठ ने अगस्त्य सुतीक्ष्ण की शिक्षा के लिये दोहराते हैं। (क्रमशः)



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आनन्द की ओर—

—रामप्रसाद वेदालङ्कार

आचार्य एवं उपकुलपति गु० कां० वि० वि० हरिद्वार

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ऋ० ३.६२.१० ॥ यजु० ३.३५ ॥ यजु० ३६.३ ॥

अन्वयः—ओ३म् भूः भुव स्वः । सवितुः देवस्य तत् वरेन्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात् ।

अन्वयार्थः—ओ३म् परमेश्वर का मुख्य नाम है जो सब का रक्षक है वह (भूः) सत् है, (भुवः) चित् है (स्वः) आनन्दस्वरूप है, ऐसे (सवितुः देवस्य) सकल जगत् के उत्पादक एवं प्रेरक सविता देव के (तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि) उस शुद्धतम वरण करने योग्य, पापों को दग्ध करने वाले तेजोरूप का हम ध्यान करें, (यः नः धियः प्रचोदयात्) अब जो यह ध्यान किया हुआ या धारण किया हुआ प्रभु का तेजः स्वरूप है वह हमारी बुद्धियों को, हमारे कर्मों को सदा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ।

हे ओ३म् ! हे ओङ्कार ! हे प्रणव ! तू सत् चित् और आनन्दस्वरूप है । हे प्रभुवर ! सत् और चित् तो हम भी हैं अर्थात् सत्ता तो हमारी भी है और चेतन भी हम हैं ही, परन्तु आनन्द हमारे पास नहीं है । इसलिये इस एक अभाव के कारण जन्म-जन्मान्तरों से, युग-युगान्तरों से, कल्प-कल्पान्तरों से आनन्द की खोज में हम निकले हुए हैं, परन्तु यह आनन्द हमें मिला नहीं । हमने सर्वत्र इसे ढूण्ढ मारा पर कहीं यह हमें मिला नहीं । संसार के नानाविध रंग-रूपों में ढूण्ढा तो वहाँ भी हमें यह मिला नहीं । संसार के सर्वविध रसों में-स्वादों में इसे देखा तो भी यह हमें मिला नहीं, नाना प्रकार के हास्य-परिहासों में, नाना-विध स्वर लहरियों में, ध्वनियों में, वाद्यों में, उपदेशों में, प्रवचनों में, व्याख्यानों में, गीतों में, संगीतों में, स्तवनों में, स्तोत्रों में इसे तलाश किया पर यह हाथ आया नहीं । विभिन्न प्रकार की गन्धों में, सुगन्धों में इसे देखा पर वहाँ भी यह मिला नहीं । विविध स्पर्शों में, भोगविलासों में हमने इसे भली-भांति देखा भाला, पर यह कहीं हमें मिला नहीं । थोड़ी-बहुत देर जो इन सब में हमें आनन्द प्रतीत हुआ भी तो बहुत जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि वह आनन्द नहीं था बल्कि आनन्द का आभास मात्र था ।

हे नाथ ! यह आनन्द हमें ममता की साक्षात् मूर्ति अपनी माँ की झोली में नहीं मिला । उस बिचारी ने हमें अपनी झोली में प्यार से लिटाकर अपने स्नेह का सार रूप दुग्धामृत पिलाया तो भी हमें यह नहीं मिला । भले ही इस माँ के स्नेह पूर्वक पिलाये हुए दुग्धामृत ने क्षण भर को, पल भर को हमें तृप्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर सुख से सुला दिया. पर जब हम फिर जागे तो फिर वही रोना, फिर वही भूख, फिर वही अतृप्ति। तो इस प्रकार यह भी आनन्द न था केवल आनन्द का आभास मात्र था। पिता ने गोद में लिया और प्यार से नाना प्रकार के रस पिलाए, जूस पिलाये, स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए, अवलेह्र चटाए, पर फिर भी मैं तृप्त न हुआ-आनन्दविभोर नहीं हुआ। बल्कि अतृप्त का अतृप्त ही रहा, भूखा का भूखा ही रहा। क्षण भर को, पल भर को थोड़ा सा तृप्त होने पर मैं तो यही समझे बैठा था कि बस अब पिता ने तृप्त कर दिया है, आनन्दित कर दिया है, पर मुझे क्या पता था कि यह भी वह तृप्ति नहीं, वह आनन्द नहीं जिसकी कि मैं खोज में जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा हूँ। मैं बहुत ही शीघ्र फिर इस संसार में अतृप्त ही बैठा रह गया।

मेरी प्यारी माँ ने, मेरे प्यारे पिता ने मुझे तृप्त करने के लिये–मुझे आनन्दित करने के लिये मानो सिर धड़ की बाजी लगा दी थी। उन्होंने मुझे सुन्दर से सुन्दर खिलौने ले दिये, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र बनवा दिये, नाना प्रकार के यान-बग्गी, साईकिल आदि आदि ले दिये, बहुत सी चित्रों से विचित्र बनी हुई सुन्दर से सुन्दर एवं आकर्षक बनी हुई प्यारी-प्यारी पुस्तकें ला दीं, यह सोच कर, कि किसी तरह मैं खुश हो जाऊँ-तृप्त हो जाऊँ–आनन्दित हो जाऊँ। मैं भी तब समझता था कि "यह सब कुछ मिल जाने पर अब मैं सब तरह से तृप्त हो जाऊँगा, अब मेरी प्यास बुझ जायेगी, मेरी भूख मिट जायेगी, मेरी इच्छा पूर्ण हो जायेगी. पर पल भर में मैं फिर अपने माता-पिता को प्यासा मिला, भूखा मिला, अतृप्त मिला, निराश और उदास मिला।"

मेरे माता-पिता मुझे स्थान-स्थान पर घुमाने ले गये, अर्थात् वे मुझे हरिद्वार ले गये, शिमले ले गये, मंसूरी ले गये, चम्बे ले गये, आबू ले गये, जम्मू ले गये, कश्मीर ले गये, दिल्ली ले गये, बम्बई ले गये, कलकत्ता ले गये, देश ले गये, विदेश ले गये, तात्पर्य यह है कि मुझे उन्होंने सुन्दर से सुन्दर नगर दिखाये, सुन्दर से सुन्दर से प्राकृतिक दृश्य दिखाये, हरे-भरे घोर घने जङ्गल दिखाये, उनमें विहार करने वाले सुन्दर-सुन्दर प्राणी दिखाये, सुन्दर-सुन्दर हरे-भरे पर्वत दिखाये, सङ्गमरमर के पहाड़ दिखाये, स्वच्छ जल के प्यारे-प्यारे स्रोत दिखाये, सरित सरोवर और सरिताएं दिखायीं। मेरे माता-पिता ने यह समझा कि "मैं यह सब देखकर तृप्त हो जाऊँगा, खुश हो जाऊँगा–निहाल हो जाऊँगा, आनन्दित हो जाऊँगा।" मैं ने भी बड़ा हर्ष अनुभव किया था तब, यह सोच कर कि "यह सब देखभाल कर मैं सब प्रकार से तृप्त हो जाऊँगा।" पर मेरे माता-पिता को क्या था और मुझे भी क्या पता था कि मैं फिर वैसे ही प्यासा का प्यासा–अतृप्त का अतृप्त ही रह जाऊँगा।

मेरी माता ने, मेरे पिता ने, मेरी बहिनों ने, मेरे भाईयों ने मुझे तृप्त करने के लिये श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वानों की–ज्ञानियों की शरण में भेजा जहाँ मैं पढ़ने-पढ़ाने में अध्ययन-अध्यापन में ऐसा तल्लीन हुआ–ऐसा मग्न हुआ कि कभी-कभी अपने भोजन आदि को भी मैं भूल गया। मैंने जिस दिन इन गुरुओं की ज्ञानियों की–विद्वानों की शरण में पहुँचा था उस दिन मैं बड़ा प्रसन्न था और मैंने तब अपना बड़ा सौभाग्य मानते हुए यह विचारा था, कि अब मुझे किसी प्रकार का कष्ट–क्लेश नहीं रहेगा और मैं सब प्रकार से सुखी हो जाऊँगा, शान्त और तृप्त जाऊँगा आदि–आदि। पर मुझे यह मालूम न था कि यहाँ पर भी एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिन मैं अपने आपको निराश और हताश खड़ा पाऊँगा जिस की मैं खोज में हूँ उस अनुपम आनन्द से मैं अपने को वञ्चित अनुभव करूंगा।

मेरे माता-पिता ने, मेरे बन्धु बान्धवों ने मेरा विवाह रचाया, मुझे मेरी आशाओं से भी बढ़कर सुन्दर, स्वस्थ एवं सुयोग्य जीवन साथी पत्नी वा पति प्राप्त करा दिया। पुरोहितों ने, ब्राह्मणों ने, पण्डितों ने संस्कार कर दिया। गुरुओं ने आचार्यों ने, देवी-देवताओं और संन्यासी महानुभावों ने बड़े लाड़–प्यार से यह आशीर्वाद दिया – "सविता वामायुः दीर्घं कृणोतु, ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म् शुभ भवतु" इत्यादि। मैंने सोचा, यहाँ मुझे वह सब कुछ मिल जायेगा जिस की कि मैं खोज में निकला था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझे आरम्भ-आरम्भ में वहाँ ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में मैं जिस आनन्द की खोज में निकला था वह यहाँ ही है। मैंने यहाँ सुन्दर से सुन्दर आकर्षक से आकर्षक वस्त्र पहने, नाना प्रकार के स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन खाए, पौष्टिक से पौष्टिक आहार लिये और भोगविलासों में ऐसा लीन हो गया जैसे कि यही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहले-पहले मुझे यह भोगविलास ही सब कुछ लगा। इस से बढ़ कर मुझे कुछ और दीखा ही नहीं। मैंने समझा, बस जा कुछ है वह सब यही है। तपों का तप यही है, जपों का जप यही है, श्रवणों क श्रवण यही है, मननों का मनन यही है, स्पर्शों का स्पर्श यही है, स्वादों का स्वाद यही है, प्राप्तव्यों का प्राप्तव्य यही है, रसों का रस यही है, तृप्तियों की तृप्त यही है, आनन्दों का आनन्द यही है इत्यादि। मुझे तब यह अपना जीवन साथी (पत्नी वा पति) प्राणों से प्यारा लगने लगा, सब जग न्यारा लगने लगा, दुःखों से दूर करने वाला लगने लगा। मुझे मेरे जीवन साथी ने ऐसे-ऐसे सुन्दर एवं अनूपम खिलोने दिये कि मैं गद्गद् हो गया। ये खिलौने बिना चाबी के चलते थे, बोलते थे, हँसते थे, नाचते थे, गाते थे, खाते थे, पीते थे, नाराज होते थे, राजी होते थे, कभी झोली में घुसते थे, कभी कन्धे पर चढ़ते थे, कभी सिर पर चढ़ते थे, कभी अंगुली पकड़ कर साथ चलते थे इत्यादि। बस मुझे यही स्वर्ग भासने लगा, यही वह दिव्य लोक प्रतीत होने लगा, यही वह ब्रह्म का अनुपम धाम त्रिपाद अनुभव होने लगा, जिस को जानकर फिर मनुष्य के लिये कुछ पाने योग्य शेष नहीं रहता। पर मुझे क्या मालूम था कि कुछ ही दिवसों में, कुछ ही मासों में, कुछ ही वर्षों में जब मैं भोग विलासों में अपने जीवन की अमूल्य निधि को खो बैठूंगा और मैं ढोल की पोल बन कर रह जाऊँगा तो फिर मेरी कमर दुःखने लगेगी, मेरा सिर दर्द करने लगेगा, हाथ-पैर लड़खड़ाने लगेंगे, आँखों के सामने अन्धेरा-अन्धेरा सा छाने लगेगा, कान भी कुछ ऊँचा सुनने लगेंगे, हाथों से तब कुछ उठाना चाहते हुए भी उठाया नहीं जायेगा, पैरों से कहीं चलना चाहते हुए भी फिर चला नहीं जायेगा, कुछ पढ़ना चाहेंगे तो सिर चकराने लगेगा, जीवन में से तब उत्साह एवं उमंगे सब विदा हो जायेंगी, और मैं फिर शक्ल और अक्ल से हीन ठूँठ सा बन कर रह जाऊँगा, तात्पर्य यह है कि मेरे तन का सब प्रकार से दिवाला सा निकल जायेगा; परन्तु फिर भी मेरा मन भरेगा नहीं, प्यासे का प्यासा, भूखे का भूखा, और अतृप्त का अतृप्त ही बना रह जायेगा। इत्यादि। बस फिर क्या होगा मैं अवाक् सा खड़ा रह जाऊँगा और झट यह कहने लग जाऊंगा कि क्या वह स्वर्ग यही है? क्या वह त्रिपाद यही है? क्या वह तृप्ति यही है? क्या वह आनन्द धाम यही है जिस ने बहुत शीघ्र ही मुझे फि अतृप्त प्यासे का प्यासा ही नहीं प्रत्युत रोग शोक से ग्रस्त कर के रख दिया। यहाँ भी मुझे वह नहीं मिल जिस की मुझे खोज थी, जिस के अन्वेषण के लिये मैं युगयुगान्तरों से निकला हुआ था। बस फिर क्या था, मैं स्वर्गधाम रूप गृहस्थ से भी आगे बढ़ा और ऐसा आगे बढ़ा कि जा पहुंचा उस सवितादेव की शरण में, जिसने कि मुझे उत्पन्न किया था और मुझे ही नहीं सकल जगत् को भी

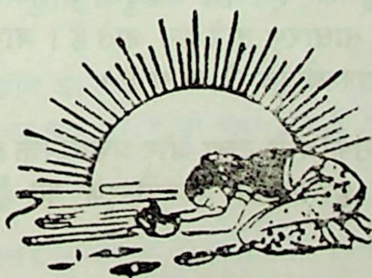
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्पन्न किया था, उसी से बोला, उसी के सम्मुख अपना रोना रो बैठा, अपना करुण क्रन्दन कर बैठा कि तू ही बता, क्या इस दुर्दशा के लिये तू ने मुझे उत्पन्न किया था ? क्या तेरे सारे संसार में सब का अन्त में यही हाल होता है ''......?

बस फिर क्या उस सविता देव ने जो केवल इस विशाल जगत् में सब का उत्पन्न करनें वाला ही नहीं, प्रत्युत सब का प्रेरक भी है। उसने मुझे प्रेरणा दी और ऐसी प्रेरणा दी कि मैं सहज ही बोल उठा— "सवितुः देवस्य" उसी सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक दिव्य गुण कर्म स्वभावों वाले पावन परमेश्वर के (तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि) उस वरण करने योग्य शुद्धतम तेज को हम धारण करें (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो प्रभु का हमारे द्वारा यह धारण किया हुआ तेजःस्वरूप है वह हमारी बुद्धियों को, कर्मों को सदा सन्मार्ग का ओर प्रेरित करे।"

इस प्रकार जब से हमने उस सविता देव की शरण ली और उस के वरण करने योग्य भर्गः स्वरूप का–तेजःस्वरूप का ध्यान किया, तभी से उसने हमारी सभी प्रकार की वासनाओं को, दुर्भावनाओं को, अतृप्त इच्छाओं को दग्ध कर दिया, भून डाला, ऐसे जैसे कि भड़भूजा भाड़ में चनों को भून डालता है और फिर जैसे वे चने दग्धबीज होकर अगले चनों को नहीं उत्पन्न कर सकते ऐसे ही हमारी वासनाएं भी भुन कर नई वासनाओं को नहीं उत्पन्न कर सकीं। इस प्रकार वह हमारी वासनाओं को, कामनाओं को अपने तेजःस्वरूप से भड़भूजे की तरह भूनकर समाप्त कर देता है और फिर हमें ऐसी प्रेरणाएं देता है कि हमारी बुद्धि, हमारी ज्ञानेन्द्रियां एवं हमारी कर्मेन्द्रियां सभी सन्मार्ग की ओर सहज ही अग्रसर होने लगती हैं। फिर जब हमारी बागडोर ही उन प्राणों से प्यारे दुःखविनाशक, सुखस्वरूप–आनन्दस्वरूप ओ३म् नाम वाले प्रभु के हाथों में चली जाती है तो तब हम जो कुछ भी करते हैं फिर उसके परिणाम में हमें दुःख दुर्भाग्य नहीं मिलते बल्कि आनन्द ही आनन्द मिलता है, आपत्तियां-विपत्तियां, आधियां, व्याधियां हमें नहीं घेरती वरन् सुख-सम्पत्तियां एवं सुख-सुविधाएं आनन्दोत्साह हमें सदा घेरे रहते हैं।

इस प्रकार हम फिर जग में रहते हुये भी उसी के होकर रहते हैं फिर हमें जो प्रमाद भीतर से मिलता है वह ऐसा अनोखा-ऐसा अनुपम होता है कि हम विभोर हो जाते हैं, सदा-सदा के लिये तृप्त एवं आनन्दित हो जाते हैं।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गतांक से आगे—

सृष्टि और उसकी उत्पत्ति—

—डा० रामेश्वर दयाल गुप्त M-A. P. H.D.

तारामण्डल के आन्तरिक प्रदेश में आणविक और आकर्षण-शक्ति-जन्य बल उत्पन्न करने वाली शक्तियों के मध्य संघर्ष के परिणामस्वरूप तारों की पर्तें ऊपर नीचे गिरा करती है।

एक ही तत्त्व था—इस विषय में आधुनिक सृष्टिविज्ञानी एकमत है। जार्ज गैमो कहते हैं "आकाश में उस तत्त्व की केवल एक ही समान पर्त थी।" सर जेम्स जीन्स भी यही कहते हैं। सर जान लावेल कहते हैं कि केवल एक ही अग्नि का गोला था जिससे बड़े धड़ाके के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ।

अब तीसरे मन्त्र को लिया जाये। प्रकाशमान तारों के न होने से सृष्टि के प्रारम्भ में सम्पूर्ण अन्धकार था। इस समय भी आकाश में सूर्य और तारों से कुछ ही स्थान प्रकाशित है। शेष समस्त अन्ध-कारमय है, अतः अब भी अप्रकेत=अज्ञात है। सभी वैज्ञानिक एकमत हैं कि सृष्टि-विकास की प्रारम्भिक दशाओं में सब तारे अत्यधिक विरल और गैस के अपेक्षाकृत शीतल क्षेत्र थे। वे प्रकाश नहीं दे सकते थे अतः अन्धकार में रहस्य था।

गैमो का कथन है कि—"किसी समय सृष्टि के आरम्भ में तारे इतने घुले हुए विरल थे कि वे पूर्ण प्राप्य आकाश को घेरे रहते थे और व्यावहारिक रूप से निरन्तर गैस को बनाते रहते थे। बाद को यह गैस विभिन्न बादलों अथवा गैस बिन्दुओं के रूप में परिवर्तित हो गयी।" गैस, अस्थिरता, विभाजन तथा मेघनिर्माण के कारण वहाँ कुछ गति अथवा कम्पन अवश्य था। इसी लहरदार ब्रह्माण्ड गैस को वेद में 'सलिल' कहा गया है।

ब्रह्माण्ड गैस से बने गैस बिन्दु बहुत बड़े थे जिनका व्यास लगभग २ से ३ प्रकाश वर्ष और भार लगभग $१०^{३०}$ किलोग्राम (१,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००) किलोग्राम था। इन्हें वेद में 'आभु' कहा गया है। यह आभु तुच्छ्य=हल्की पर्त से ढँका हुआ था—इसी वचन से आधुनिक वैज्ञानिक सहमत हैं क्योंकि वे कहते हैं कि ऐसे गैस बिन्दुओं में गुरुत्व आकर्षण की शक्तियाँ काम किया करती हैं जो कालान्तर में सिकुड़ कर साधारण तारे बन जाते हैं। आभु से घना पदार्थ केन्द्र में पहुँच जाता है और तुच्छ्य=हल्का पदार्थ चारों ओर आवृत हो जाता है।

ये तारे अपने गुरुत्वाकर्षण के संकोच से उष्ण और प्रकाशयुक्त हो जाते हैं। यह संकोच (Contraction) का सिद्धान्त प्रसिद्ध विज्ञानी हरमनवान हेलमहोल्ट्ज का है। इसे वेद ने महि कमी पता से, उत्पन्न होना' बताया है।

चतुर्थ मन्त्र में उपर्युक्त की पुष्टि में सूक्ष्म अदृश्य अभौतिक मन की प्रथम शक्ति के रूप में 'काम' की सत्ता का वर्णन किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पाँचवे मन्त्र में 'आभु' से बिखरी हुई 'रश्मि' (किरण, धारा अथवा सूत्र) का वर्णन है। 'आभु' के अत्यन्त उष्ण होने के कारण उससे किरणों का विकरण सम्भव था। 'आभु' के विरल गैस रूप होने के कारण उससे गैस की कुछ धारायें निकलना भी सम्भव था। विलसन पर्वत से लिये गये अनेक फोटो चित्रों से सिद्ध होता है कि गैस के नेबुला से ऐसी धारायें आती रहती हैं। उर्सा मेजर में चक्राकार नेबुला 'कैसनबैनाटिसी' ऐन्ड्रोमेडा और कोमा बेरेनिसेज तथा ओरियन में गैसपूर्ण नेबुला ऐसी पिघलती हुई धाराओं को प्रदर्शित करते हैं। साईवस जैसे कुछ नेबुलाओं को सूत्रमय (Filanentary) नेबुला नाम दिया गया है क्योंकि उनसे सूत्र या धारायें निकलती हैं।

इन सूत्रों या धाराओं की गति आज भी तिरछी, नीचे, ऊपर—सभी दिशाओं में हुआ करती है यह बात वेदमन्त्र में वर्णित है।

ऐसे कुछ सूत्र रेतोधा=बीज धारक और महत्तर पिण्ड हो जाते हैं। उनमें से कुछ स्वधा=अपने को अलग रखने वाले, छोटे रह जाते हैं और कुछ प्रयति=गुरुत्वाकर्षण से दूसरों को अपनी ओर खींचने वाले महान् बनते जाते हैं।

एक शताब्दि से अधिक व्यतीत हुआ जब एक महान् जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्टल सर्वप्रथम ग्रहमण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक रूप से स्वीकार्य सिद्धान्त को फ्रांस के गणितज्ञ पियरे साइमन डि ला प्लास ने विकसित किया। जर्मनी के भौतिक शास्त्री कार्ल वान वाईजेस्कर ने इस सिद्धान्त पर की गई आपत्तियों का उत्तर देकर तथा सूर्य रचना सम्बन्धी अधिक सूचना देकर इसे पुष्ट किया। पश्चात् क्यूइपर और तेरहार ने आगे संशोधन करके इसे स्थापित किया जो अब स्वीकृत किया जा चुका है। उन्होंने दिखाया कि सूर्य में १०% धूलि है जिसके कण सूर्य से अलग होकर और परस्पर मिलकर ठोस होते जाते हैं और शेष ६६% गैसें हैं जो केन्द्रवर्ती शक्ति के द्वारा बाहर निकाली जाया करती हैं। यही लघु धूल पिण्ड चारों ओर के धूलकणों को अपनी ओर मिलाकर बड़े होते जाते हैं। मन्त्र में लघु पिण्डों को 'स्वधा' और महापिण्डों को 'प्रयति' कहा गया है।

तारों ओर आकाशगंगा तारापुञ्ज में कौन अधिक प्राचीन है? गैमो के अनुसार तारे और जेम्स जीन्स के अनुसार आकाशगंगा। सर लावेल के अनुसार दोनों ही का निर्माण एक प्राचीनतम अग्निगोल से हुआ। इसी को मन्त्र में 'आभु' कहा गया है। वेद के सिद्धान्त को सर लावेल अनुमत करते हैं।

छठे मन्त्र में प्रश्न है कि कौन जानता है और कह सकता है? ('क' का अर्थ कौन भी है और प्रजापति परमात्मा भी है, अतः प्रश्न का उत्तर भी वहीं पर है कि परमात्मा ही जानता है और बता सकता है—सम्पादक)

सातवें मन्त्र में प्रश्न के उत्तर के रूप में बताया कि परम आकाश में इस सृष्टि का अध्यक्ष है। यह वैज्ञानिक तथ्य है। पृथिवी का धारक सूर्य है। सूर्य का धारक तारापुंज (आकाशगंगा है जिसके केन्द्र के चारों ओर सूर्य घूमता है। नीहारिका तारापुंज का यह केन्द्र ही, आधुनिकतम विज्ञान के अनुसार,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

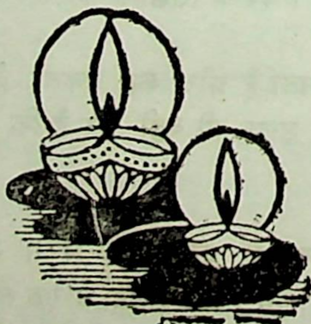
सैंगिटेरियस तारापुंज में है। नीहारिका का धारण कौन है—इस का उत्तर विज्ञान नहीं दे सकता। किन्तु मन्त्र में इसका उत्तर देते हुए कहा गया है कि इस सृष्टि का धारक अध्यक्ष परम व्योम में है। यह सर्व व्यापक परमात्मा ही है। इस प्रकार वेद ने अन्तिम सत्य का पतिपादन कर दिया। वेद का अर्थ है ज्ञान। आधुनिक विज्ञान के आधार उसका अध्ययन और उसके अर्थों का पुनर्वीक्षण बुद्धिमता पूर्ण होगा।

आधुनिक वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि हमारा सूर्य उष्णतम गैस का महान् पिण्ड है। सामान्य अन्तरिक्षीय स्थितियों में यह गैस द्रव अथवा ठोस से कम घनी है यह 'सत्' है। किन्तु सूर्य के केन्द्रीय प्रदेश में दस बिलियन वातावरणों से अत्यधिक भार के कारण यह गैस पारे के घनत्त्व से छः गुणी घनी हो जाती है। सूय का औसत घनत्त्व पानी के घनत्त्व से १.४१ गुणा अधिक है। ऐसा घनत्त्व रखने वाली गैस न ही 'सत्' है और न 'असत्'। अतः मन्त्र का कथन वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतः शुद्ध है।

इस प्रकार सूर्य की गैसें न सत् हैं न असत्, किन्तु सूर्य और तारे ऐसी गैसों से बने हुए हैं। प्रारम्भ में सम्पूर्ण तत्त्व सम्पूर्ण आकाश में समान रूप से विभाजित था। इसका औसत घनत्त्व पानी के घनत्त्व से ०,०००,०००,०००,०००,०००,००० ०००,११.२—२२ गुणा था। इस तत्त्व को क्या कहा जाये, सत् या असत् ? गैस या द्रव ? कोई ऐसा कह नहीं सकता। वैज्ञानिकों ने इस पदार्थ का नाम 'यलेम' 'YLEM' रखा है। मन्त्र में इसे 'अम्भस्' कहा है जो सार्थक है जब कि 'यलेम' निरर्थक है। शब्द की अज्ञात तरगें ध्वनि कहाती हैं, इन्हीं को अम्भस्' कहते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने शब्द और आकाश को सम्बन्धित माना है, जो आधुनिक विज्ञान को अब मान्य हुआ है।

मन्त्र में प्रश्न किया है कि 'किसने क्या वस्तु ढांकी' इसका भाव यह है कि प्रकृति अवस्था से सृष्टि अवस्था तक आने में बहुत कम समय लगा। आधुनिक वैज्ञनिक कहते है कि सृष्टि के प्रारम्भ के पश्चात् आणविक प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप समस्त मूलतत्त्व केवल आधा घण्टे में उत्पन्न हो गये। (गैमो कृत बर्थं ऐंड डेथ आफ सन' आधा घण्टा का समय विश्व के निर्माण में नितान्त तुच्छ काल है। इस प्रकार मन्त्र का यह भाग पूर्णतः शुद्ध है।

'कुह कस्य शर्मन्'—कहाँ किसके आश्रय में, किसके हितार्थ ?—यह प्रश्न इस आधुनिकतम आणविक युग में अब भी अनुत्तरित है। (क्रमशः)



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में दयानन्द युग—

—ज्ञानचन्द शास्त्री
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सन् १६५७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कलकत्ता में अपनी स्थापना कर ली, और सात वर्षों के संघर्ष के बाद कम्पनी ने अपना झण्डा अवध पर भी फहरा दिया। इस विस्तारवादी मनोवृत्ति ने सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में समूचे देश पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया, और साथ ही कम्पनी के काले शासन का अन्त हो गया। देश का शासन महारानी विक्टोरिया के अधीन हस्तगत हो चला। कम्पनी के अन्त हो जाने और महारानी के द्वारा शासन की बागडोर सम्भालने से भारत की जनता ने राहत की सांस ली। इस प्रकार १०० वर्षों में अंग्रेजों ने भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

लार्ड मैकाले ने कहा था, यदि किसी देश, जाति पर पूर्ण रूप से प्रभुत्व स्थापित करना हो तो उसकी संस्कृति, सभ्यता और भाषा बदलो, साथ ही अपनी सांस्कृतिक तथा भाषा का बाना पहना डालो।

अंग्रेजी सांस्कृतिक और भाषा भारतीय युवकों के लिये आकर्षण की वस्तु बन गयी थी। हिन्दू, मुस्लिम धार्मिक नेता नवयुवकों के इस आकर्षण से चिन्तित थे, साथ ही राजा राममोहन राय, सैयद अहमद खाँ जैसे कुछ नेता अंग्रेजी शिक्षा तथा भाषा का समर्थन कर रहे थे।

वैसे १५वीं शताब्दी में ईसाई धर्म प्रचारकों ने दक्षिण भारत में प्रवेश कर लिया था, पर अंग्रेजी शासन में धर्म प्रचार को खुला बल मिला। इस काल में दक्षिण भारत गरीबी से जूझ रहा था। इस दैवी प्रकोप का ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म प्रचार का सुअवसर समझ कर एक नारा दिया—

ईसा मसीह हमें क्या देता है।
खाने की रोटी और तन का कपड़ा।।

अंग्रेज रहन-सहन को अपनाकर लोग शरीर से भी अंग्रेज बन गये. ईसाई प्रचारकों ने इस मुल्क की भाषा सीखी और सभी भाषा में बाईबल का अनुवाद किया। हिन्दी भाषा में बाईबल का अनुवाद सर विलियम ने किया था, साथ ही इसकी भाषा शैली कथा वाचक सी रखी जिससे यहां की जनता बाईबल से प्रभावित हुई।

बाईबल में कपोल कल्पित अनेक प्रसंग हैं। सृष्टि उत्पत्ति के विषय में वर्णन है कि हम सभी जनसमूह में एक थे, एक भाषा भी। आसमान से महोबा उतर आया और उसने हमें विखण्डित कर दिया,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिससे आज हम दूर-दूर अपने घर और देश बनायें हुए हैं। साथ ही हिन्दू देवी-देवता पर घ्रणित आरोप लगाकर भारत की भोली-भाली जनता को फुसला लिया और अपनी संस्कृति का बाना पहना दिया।

ईसाई धर्म प्रचार हेतु सारे देश में मिशन स्कूलों की स्थापना कर दी देश की देशी भाषाओं के माध्यम से बाईबल को अनिवार्य शिक्षा बना दो। साथ ही पाठ्य विषयों को उन विद्यालयों के छात्रों को पढ़वाने के लिये यहाँ की देशी भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों की रचना भी कराई थी।

हिन्दी के विद्वान् कहते हैं कि ईशाईयों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर उसे अपने धर्म का प्रचार का आधार बनाया था। लेकिन ऐसा नहीं, उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में हिन्दी को प्रचार का माध्यम बनाया, साथ ही बंगला, मराठी, पंजाबी, उर्दू, राजस्थानी, नेपाली, गुजराती, तेलगू आदि भारतीय भाषाओं को प्रचार माध्यम बनाया था। प्रायः भारत की सभी भाषाओं में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। ईसाई धर्म के प्रचार के प्रस्ताव के कारण मधुसूदन जैसे बुद्धिजीवी हिन्दू भी ईसाई बन गये, इतना ही नहीं विलायत से शिक्षा प्राप्त करके हिन्दू मजबूरन शासकों का धर्म स्वीकार कर रहे थे।

इन्हीं कारणों ने महर्षि दयानन्द के लिये कर्मक्षेत्र तैयार कर दिया था। अपनी कलम के द्वारा जो काम उन्होंने किया वही यूरोप में वहाँ के धार्मिक नेता मार्टिन-लूथर ने किया था।

हिन्दी साहित्य इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सम्वत् १९०० से मानते हैं। सम्वत् १९२५ से १९५० तक प्रथम उत्थान मानकर इस आधुनिक काल को बांट दिया है इन तीनों को भारतेन्दु युग, द्विवेदी-युग, छायावादी युग का नाम हिन्दी विद्वानों ने दिया है। लेकिन १९२५ से पहले २५ वर्षों का युग किस नाम से जाना जाये, यह प्रश्न आज भी हमारे सामने बना हुआ है।

सम्वत् १९०० के आस-पास ईसाई धर्मावलम्बी कबीर जैसी भाषा में खण्डन-मण्डन कर रहे थे, जिसका मुंह तोड़ जवाब महर्षि दयानन्द ने दिया। हिन्दी के विद्वानों ने स्वामी जी की शैली का खण्डनात्मक रूप ही लिया। यदि वे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कार विधि, आखयतिक, आर्योद्देश्यरत्नमाला, व्यवहार-भानु आदि स्वामी जी की रचनाओं पर ये विद्वान् दृष्टिपात कर लेते एवं साथ ही भाषा का अध्ययन भी सत्यार्थप्रकाश के खण्डन-मण्डन वाले प्रकरणों को लेकर की गई समीक्षा न करते।

स्वामी जी की विभिन्न विषयों के अनुरूप शैली भी बदलती चली गई। अतः हिन्दी के समालाचकों को स्वामी जी सभी रचनाओं को सम्मुख रखकर शैली और भाषा को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्णय देना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है कि सम्वत् १६०० से १६२५ तक का समय दयानन्द युग है। स्वामी जी गद्य शैली की समीक्षा करते समय धर्म प्रचारक होने का संकुचित दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिये। जो गद्य शैली भारतेन्दु युग में अपनाई गई, उसका शिलान्यास तो स्वामी जी और उनके समकालीन लेखकों ने शास्त्रीय पद्धति से समीक्षा और व्याख्या करने की पद्धति का आरम्भ किया था। यह सत्य है कि उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि पर भारतेन्दु युग में लेखनी उठी।

स्वामी जी की लेखनी में भारतीय चिन्तन परम्परा में हलचल पैदा कर दी। साथ ही ईसाई, पादरियों की बौखलाहट को जन्म दिया, जो वेद और पुराणों की जमकर आलोचना करके भारतीय जनता के धार्मिक विश्वास को आघात दे रहे थे। संस्कृत का ज्ञान न होने के कारण जनता उनके कुतर्कों का जबाब नहीं दे पा रही थी। अतः समय की पुकार थी कि कोई संस्कृत का विद्वान् धर्म ग्रन्थों को बोलचाल की भाषा में समझाकर जनता को नई दिशा दे सके। वह कौन सी भाषा हो देश में अनेक भाषा है यह प्रश्न सम्मुख खड़ा था। महर्षि दयानन्द ने अपना कार्य राष्ट्र भाषा हिन्दी में श्री गणेश करके एक नई दिशा दिखाकर को महत्वपूर्ण कार्य किया उसके लिये उनका नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिये था। मातृ भाषा गुजराती होते हुए भी हिन्दी में ग्रन्थ लिखना यह स्पष्ट कर देता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाना चाहते थे। उनका उद्देश्य वसुदेव कुदुम्बकम् की भावना थी, अपने स्वप्न को साकार करने के लिये हिन्दी में ही ग्रन्थ की रचना की।

स्वामी जी की क्रान्तिकारी लेखनी ने विपक्षियों का खण्डन और प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्य किये। प्राचीन संस्कृति साहित्य का अनुसन्धान कार्य हिन्दी में सर्वप्रथम स्वामी जी की लेखनी से हुआ।

स्वामी जी धर्म प्रचारक थे। समीक्षकों का इतना कहने से ही काम नहीं चलेगा उनके पीछे एक युग चला आ रहा है यदि हम उदार दृष्टिकोण से उनकी शैली की समीक्षा करें तो हमें हिन्दी गद्य शैली को वर्तमान रूप देने वालों लेखकों में स्वामी जी को प्रथम स्थान देना पड़ेगा। भारतीय संस्कृति को जनता की भाषा में न लिखने वाले स्वामी जी प्रथम विद्वान् हैं। स्वामी जी से पूर्व संस्कृत के विद्वान् हिन्दी में लिखना अपना अपमान समझते थे। प्राचीन धर्म ग्रन्थों को दीमकें चाट रही थी। पश्चिमी दुर्लभ ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां मुँह मांगे दामों में खरीद कर अपने ग्रन्थकगारों की शोभा बढ़ा रहे थे। स्वामी जी ने भारतीय विद्वानों को एक नया रास्ता दिया जिससे संस्कृत वांगमय में कार्य करने की होड़ लग गई, इस सब कार्य का श्रेय स्वामी जी को जाता है।

इस प्रकार हम प्रतिपादनात्मक, निर्वचनात्मक वादात्मक, इन तीनों शैलियों में स्वामी जी को पाते हैं। वेद मन्त्रों की व्याख्या निर्वचनात्मक शैली का उत्तम उदाहरण है। वह इस क्षेत्र में इस शैली के जनक कहे जायेंगे क्योंकि इनसे पहले किसी ने किसी भारतीय भाषा में यह कार्य सम्पादित नही किया था। प्रतिपादनात्मक शैली में उन्होंने अपने विषयों को हिन्दी में सर्वसाधारण के सामने रखने का जो सफल प्रयत्न किया था। जबकि उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। वादात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विपक्षियों का खण्डन-मण्डन करते समय किया इसमें उनके पथ प्रदर्शक ईसाई धर्म प्रचार कर रहे हैं फिर भी स्वामी जी की शैली ईसाई धर्म प्रचारकों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और परिष्कृत है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

इन्हीं सब दृष्टियों से हमें मानना पड़ेगा कि सम्वत् १९०० से १९२५ तक का समय दयानन्द युग था। इसमें जो कार्य स्वामी जी और उनके समकालीन लेखकों ने किया जिसे भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने अधिक सजाया और संवारा है।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षा तथा इसकी महत्ता—

—धनीराम सैनी

दयानन्द जी सरस्वती आर्यसमाज के तीसरे नियम में लिखते है—"वेद सब सत्य–विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" स्वामी जी के इस नियम का निर्माण करने का उद्देश्य केवल वेद की शिक्षा को न जानने से था—साथ ही हमारी प्राचीनकाल से लुप्त वेद के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न करना था। स्वामी जी चाहते थे कि संसार के व्यक्ति वेद की ओर लौट चले, लोगों ने यथार्थ ज्ञान को भूलाकर रूढ़िवादिताओं पाखण्डों से, अविद्या से अपने आत्मा को ढक दिया है। स्वामी दयानन्द जी ने वेद की महत्ता की ओर प्रकाश डाला और वेद के रहस्य को बतलाया। ऋषि दयानन्द का प्रमाणों के आधार पर विश्वास था कि वेद में परमेश्वर, प्राकृतिक नियम और परमेश्वर का आत्मा और प्रकृति के साथ सम्बन्ध, इन सब बातों के विषय में सत्य ज्ञान को प्रकाशित किया गया है तो इसे ईश्वरीय सत्य के प्रकाश के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इसके पश्चात् विद्वान् ऋषि की शिक्षा को सर्वोत्तम बतलाते हैं क्योंकि वह वैदिक और वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली थी। एक पाश्चात्य विद्वान् लिखते है—In the Matter of vedie interpretaion, Iamconvinsid that whatever may be the fianl complete interpretation, Dayanand will be honoureb as the first discoverer of the night clubs vedic education," वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या कोई भी हो, ऋषि दयानन्द का यथार्थ निर्देशों के प्रथम आविर्भावक के रूप में तथा वैदिक शिक्षा के रूप में सदा मान किया जायेगा।

निष्कर्ष यह निकलता है कि वेद की जो शिक्षा है वह – ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित वेद वीहित शिक्षा प्रणाली है। वैदिक शिक्षा पूर्णतः वैज्ञानिक तथा मानवता का पाठ पढ़ाती है। स्वामी की सत्यार्थ–प्रकाश में ब्रह्मचारी को किस प्रकार आचार्य के पास जाना चाहिये लिखते हैं। साथ ही पाँचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों व लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य कुल में हो। पिता माता वा अध्यापक अपने लडके-लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। आचार्य अपने शिष्यों को शास्त्रों की विधिवत् शिक्षा देवें तथा प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं को सिखलावें।

वेद को स्त्री और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार है—

जैसे जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवें वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है। और जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्त्रियों के पढ़ाने का निषेध करते हो मूर्खता, स्वार्थता और निबुद्धिता का प्रभाव है। देखों वेद में कन्याओं कन्याओं को पढ़ने का प्रमाण—

"ब्रह्मचर्य्येण कन्या३युवानं विदन्ते पतिम्॥"

स्वामी जी बहुत ही चिन्तनशील दार्शनिक थे वे चाहते थे कन्याओं की पाठशालायें वा गुरुकुल दूरी पर होने चाहिये। आज हमने वैदिक शिक्षा को अनुभव किया है कि कॉलेजों में योग्यता-नैतिक शिक्षा होनी चाहिये जब हमने स्थिति अनुभव की तो हमने वेद को स्मरण करना आरम्भ किया और वेद के महत्त्व की ओर ध्यानाकर्षित हुए हैं। सह शिक्षा से क्या परिणाम निकले हैं यह आज सर्वविदित ही है आज वेद के आलोचक ही कहने लगे है —"In the whole word, there is no study so beneficial and so elevating as that of the vedas and upnishads. they are tne proofs of the highest-wisdom."—Unknown. जर्मन के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् मैक्समुलर ने १८७० में वेद का अनुवाद प्रकाशित किया उसने भूमिका में लिखा था—"वेद तथा वेद की शिक्षा गड़रियों के गीत, बच्चों की बिलबिलाहट और जादू टोनों के मन्त्रों से भरपूर हैं—

मैक्समूलर की सम्मति ने योरुपियन और भारतीय मस्तिष्क में वैदिक शिक्षा से उत्पन्न कर दी। परन्तु १८७८ अर्थात् आठ वर्ष पश्चात् महर्षि दयानन्द की (ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का) नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई और उसके पास भी एक कापी पहुँचो एकाएक उसके विचारों में क्रान्ति आ गई परिणामस्वरूप उसने अविलम्ब एक पुस्तक छापी जिसका नाम है—India–what it teache us? यह इण्डियन सिविल सर्विस के परीक्षार्थियों को पाठ्य पुस्तक के रूप पढ़ाई जाती रही है—इस पुस्तक में क्या लिखा है—"मेरी धारणा है कि मनुष्य मात्र के स्वाध्याय, कल्याण के लिये आर्य जाति के लोगों के अध्ययन के लिये वेद के समान कोई पुस्तक महत्वपूर्ण और उत्तम नहीं है इसकी शिक्षा से विश्व कल्याण सम्भव है। अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार है—"I maintain that for the study of human being rather aryan life there is no thing in the world egual inimportance to the vedas for us educati‹ n velfare is possible ot the world."—Max Mullar..

वैदिक शिक्षा के आधार में स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—२५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करें तो १६ वर्ष पर्यन्त कन्या जो परुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री–१७ वर्ष जो पुरुष ३६ वर्ष ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री–१८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करें तो स्त्री–२० वर्ष तक रहे, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करें तो स्त्री–२२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करें तो स्त्री २४ वर्ष ४८ वर्ष से आगे पुरुष और २४ वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये। यह नियम कितनी विशाल शिक्षा अपने में रखता है इससे सभी परिवार नियोजन की समस्यायें समाप्त हो सकती है साथ ही चार आश्रमों का भी विधिवत् पालन करना पड़ेगा।

वैदिक शिक्षा से राष्ट्र की समुन्नति सम्भव है—

वैदिक शिक्षा उन पवित्रात्माओं ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित है—जो सर्वाङ्गीण विकास चाहते थे जिनका आत्मा पूर्णतः-योगसाधना द्वारा विशुद्ध था। इस शिक्षा–प्रणाली में हमारी आधुनिक सभी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समस्याओं का पूर्णतः समाधान हो सकता है। श्री W. D. Brown के विचार पढ़िये आपने अपनी पुस्तक-Superiority of vedic Religion में प्रकट किये हैं—It (vedic Religion) recognises but one god it is a thoroughly (Scien tific religion where religion and Science meet hand in hand here theology is based upon seience and philo sophy.

वैदिक धर्म एक ईश्वर का प्रतिपादन करता है पूरे तौर पर सांईस का धर्म है जहाँ धर्म और सांईस हाथ में हाथ मिलाते हैं यहाँ अध्यात्म विद्या, विज्ञान और तर्कवाद पर खड़ी है। वैदिक शिक्षा और दर्शन द्वारा ही व्याक्त स्वयं को जान सकेंगे जिससे वे अविद्या के रूप में नहीं पड़ेंगे इस अविद्या के कारण ही विश्व के व्यक्ति विशेष अपने यथार्थ उद्देश्यों को भूल गये हैं। जब हमारे देश में लार्ड मैकाले की शिक्षा-प्रणाली समाप्त हो जावेगी तभी हम अपने को पूर्ण स्वदेशो नागरिक कहने का अधिकार रखते है और हम तो आर्य वीरों से यही कह सकते हैं—"शान्ति सौरमज़ल उठे फिर सत्य की सरगम बजा दे। आर्य तू है, आर्य वीरों को अभय अमृम पिला दे ॥"

आज चारों ओर अन्धकार है इसका कारण है कि हम ऋषियों के बनायें नियमों से विचलित हो गये हैं वेद और वैदिक शिक्षा के आधार भूत महत्व को भूल गये है, आज विश्व कल्याण तभी हो सकेगा जब हम इस आदर्श वैदिक शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिपात करेंगे तथा जोवन में क्रियान्वित करेंगे।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी समाचार—

दिनांक ११ एवं १२ सितम्बर, १९८२ को डा० सत्यव्रत अध्यक्ष, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय का गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में शुभागमन हुआ। विजिटिंग प्रोफेसर होने के पश्चात् गुरुकुल में उनका यह प्रथम पदार्पण था। उनके आगमन पर गुरुकुल विश्वविद्यालय के समस्त उपाध्याय एवं छात्रों की एक संगमिनी बौद्धिक सभा हुई, जिसमें कुलपति, उप-कुलपति एवं कुलसचिव भी उपस्थित थे। डा० सत्यव्रत जी ने संस्कृत-भाषा की महिमा एवं व्यापकता को अभिलक्षित करते हुए अपने सारगर्भित भाषण में थाईलैण्ड की भाषा में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का दिग्दर्शन कराते हुए यह सिद्ध किया कि बाह्य देशों में मूलतः संस्कृत के शब्द देखने को मिलते हैं। उन्होंने बताया कि इटली में शिक्षा, राजनीतिक तथा सामाजिक जगत् में प्रचलित परिपाटियों से पर्याप्त समन्वित है। इसीलिये इटली की एक समिति ने ऐसा भी निर्णय लिया है कि भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ इटली के विश्वविद्यालयों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये। १२ सितम्बर को पुनः डा० सत्यव्रत जी ने विश्वविद्यालयीय विद्वानों की सभा में संस्कृत साहित्य के अन्दर शब्द पयायवृत्ति को लेकर अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं शोधात्मक भाषण दिया। उन्होंनें कहा कि संस्कृत इतना समृद्धियुक्त है कि वहाँ एक शब्द के सैकड़ों पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि प्रत्येक शब्द का अपना इतना महत्व है कि वह शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है उस अपेक्षित अर्थ को वह प्रयुक्त शब्द ही कह सकता है। उसके स्थान पर तद्भिन्न शब्द प्रयुक्त होकर तद्अर्थ को प्रकट करने में समर्थ नहीं होता है। उन्होंनें कालिदास महाभारत तथा रामायण आदि अनेक ग्रन्थों के उदाहरणों द्वारा उस तथ्य की पुष्टि की। सभा की अध्यक्षता कुलपति जी ने की तथा सभा का संयोजन श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी, वरिष्ठ प्राध्यापक संस्कृत-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने किया।

१८ सितम्बर १९८२ को वेद एवं कला महाविद्यालयों के प्राध्यापकों व विद्यार्थियों के सम्मुख आई० आई० टी० दिल्ली के उप-कुलसचिव डा० रूप नागपाल जी ने परीक्षा-प्रणाली पर एक गम्भीर व तर्क सम्मत व्याख्यान दिया। डा० नागपाल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि अब प्रत्येक विश्वविद्यालय में इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र प्रत्येक विश्वविद्यालय में होना चाहिये, जहाँ पर जाकर विद्यार्थी अपनी मानसिक परेशानियों का निराकरण कर सके। उन्होंने यह भी कहा कि इस केन्द्र की आवश्यकता अब इसलिये अधिक आवश्यक हो गयी है क्योंकि अनेक सांख्यिक गणनाओं के आधार पर यह परिणाम प्राप्त हुए हैं कि प्रत्येक तीसरा विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में अधिक मानसिक तथा शारीरिक दबाव अनुभव करता है। इस दबाव को दूर करने के लिये डा० नागपाल ने यह भी मत व्यक्त किया कि अब अनेक शिक्षाविद् इस परिणाम पर पहुँचे है कि यदि एक वार्षिक परीक्षा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को दो-तीन उप-भागों में विभाजित कर दिया जाय, तो इससे विद्यार्थी की अनेक समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। कुलपति जी ने इस बात पर बल दिया कि विद्यार्थियों से हीनता की भावना को समाप्त करके किसी न किसी प्रकार की योग्यता को विकसित किया जा सकता है। यह केवल तभी हो सकता है, जब विद्यार्थी व अध्यापक के मध्य निकट का सम्पर्क स्थापित हो तथा वह विश्वासयुक्त हो। अन्त में आचार्य एवं उप-कुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार जी ने समापन भाषण दिया।

सितम्बर माह में इतिहास विभाग में विद्वान् श्री (डा०) डी० एस० त्रिवेदी ने व्याख्यान दिया। डा० त्रिवेदी ने अपने तर्कसंगत व्याख्यान में यह मत व्यक्त किया कि वर्तमान स्वतन्त्र भारत में औपनिवेशिक विचारधारा से मुक्त होकर राष्ट्रीय दृष्टि से इतिहास को पुनः लिखा जाना आवश्यक है। डा० त्रिवेदी ने महाभारत युद्ध और उसका विश्वव्यापी प्रभाव" विषय पर व्याख्यान देते हुए यह भी कहा कि महाभारत युद्ध लगभग ५१८७ वर्ष पूर्व की घटना है। इस तिथि की स्थापना के सम्बन्ध में उन्होंने खगोलीय प्रमाण प्रस्तुत किये। कुलपति जी ने भी अपने भाषण में औपनिवेशिक दासता से मुक्त इतिहास को लिखे जाने के मत की पुष्टि करते हुए कहा कि यह परम्परा गुरुकुल के इतिहासविदों द्वारा काफी पूर्व समय से प्रारम्भ की जा चुकी है। आज आवश्यकता केवल यह है कि इस परम्परा को विकसित किया जाय। सभा की अध्यक्षता श्री डा० विजयेन्द्र कुमार शर्मा ने की तथा संयोजन विभाग के अध्यक्ष डा० विनोदचन्द्र सिन्हा जी ने किया। इस सभा में विभाग के सभी उपाध्यायों के अतिरिक्त कुलसचिव जी भी उपस्थित थे।

दिनांक २ अक्तूबर १६८२ को आचार्य एवं उप-कुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार जी ने स्वामी समर्पणानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल प्रभात-आश्रम में आयोजित वेद विद्वत् सम्मेलन की अध्यक्षता की।

दिनांक ८-१०-८२ को कुलपति जी, सी० बी० आर० आई० रुड़की के निदेशक श्री गुप्ता जी, डा० विजयशंकर जी एवं डा० काश्मीर सिंह भिण्डर कांगड़ी ग्राम गये। इस अवसर पर उपर्युक्त व्यक्तियों ने कांगड़ी ग्राम के विकास के लिये विचार-विमर्श किया। श्री गुप्ता जी एवं बैंक के अधिकारियों ने कुलपति जी कांगड़ी ग्राम के विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया।

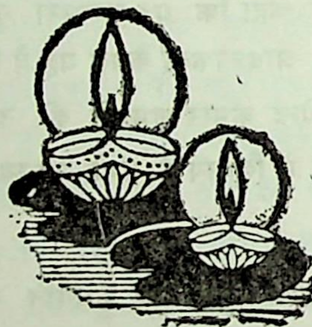
दिनांक ११ अक्तूबर ८२ को वैनिस (इटली) यूनिवर्सिटी के हिन्दी-विभाग के प्रोफेसर डा० लक्ष्मण प्रसाद मिश्र ने हिन्दी-विभाग में एक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत भाषण दिया। इस सभा का संयोजन डा० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी जी ने किया।

दिनांक २४-१०-८२ को इतिहास विभाग के तत्वाधान में संयुक्त राष्ट्र-संघ स्थापना-दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्रीमती डा० पूनम सागर ने "संयुक्त राष्ट्र संघ का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

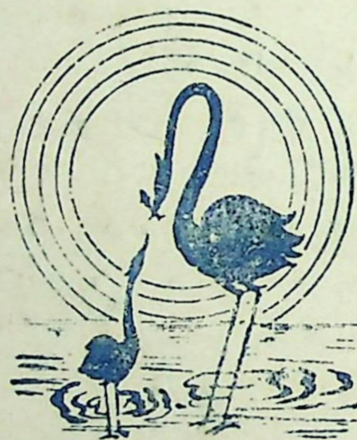
निःशस्त्रीकरण में योगदान" विषय पर एक विस्तृत तर्कपूर्ण शोध-निबन्ध प्रस्तुत किया। इस अवसर पर श्री ललित पाण्डेय, प्रवक्ता इतिहास विभाग ने भी अपना शोध-प्रबन्ध पढ़ा। सभा की अध्यक्षता श्री डा० जबरसिंह सेंगर, कुलसचिव जी ने की। इस सभा का आयोजन डा० काश्मीर सिंह भिण्डर, वरिष्ठ प्राध्यापक इतिहास-विभाग ने किया।

दिनांक २६ अक्तूबर १९८२ को मैक्सिको विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ह्वान मिगुएल दे मोरा नें ऋत पर अपना शोध-परक भाषण दिया। इसका संयोजन प्रोफेसर श्री सदाशिव भगत ने किया।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



शक्तिप्रेस, (नहर पुल) कनखल फोन : ७७

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका



कार्तिक–२०३९ वर्ष–३४ अंक ८

नवम्बर–१९८२ पूर्णांक–३३८

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक–पत्रिका

ओ३म्

गुरुकुल–पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डॉ० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

विषय–सूची

—◆◆—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

कार्तिक २०३९ | वर्ष : ३४, अंक : ८
नवम्बर १९८२ | पूर्णांक : ३३८

श्रुति सुधा

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ।। साम० १११ ।।

अन्वयः—सुभग ! आहुतः अग्निः नः भद्रा [भवतु], रातिः भद्रा [भवतु], अध्वरः भद्रः [भवतु] उत प्रशस्तयः भद्राः [भवन्तु] ।

सं० अन्वयार्थः—हे शोभनैश्वर्ययुक्त प्रभो ! भली-भांति ध्यान किया हुआ परमेश्वर वा आहुतियों से आहुत किया हुआ अग्निदेव हमारे लिये कल्याणकारी हो, हमारा दिया हुआ दान कल्याणकारी हो, हमारा हिंसारहित यज्ञ कल्याणकारी हो, और हमारी की गई प्रशस्तियाँ-प्रशंसांए-स्तुतियाँ कल्याणकारिणी हों ।

अन्वयार्थः—(सुभग ! आहुतः अग्निः नः भद्रः) हे उत्तमैश्वर्यमय प्रभो ! अच्छी प्रकार से ध्यान में बुलाया गया, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर वा घृत-सामग्री आदि द्वारा परितृप्त किया हुआ अग्निदेव हमारे लिये सुखकारी और कल्याणकारी हो, (रातिः भद्रा हमारा दिया हुआ दान हमारे लिये सुखकारी और कल्याण--कारी हो, (अध्वरः भद्रः) हमारा हिंसारहित किया हुआ अध्यात्म यज्ञ हमारे लिये सुखकारी और कल्याणकारी हो । (उत प्रशस्तयः भद्राः) और हमारी प्रशंसाएं-स्तुतियाँ भी हमारे लिये सुखकारिणी और कल्याणकारिणी हों ।

साधकों-उपासकों को चाहिये कि वे जो यज्ञ करें, दान करें, पुण्य करें, अहिंसनीय अध्याम यज्ञ करें और उस में उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु का आह्वान करें तो वे सब ऐसे करें कि जिससे उन्हें इस लोक में सुख मिले और परलोक में उनका कल्याण हो ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुषों के वचन—

माता-पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्त्तव्य—

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, हीरा, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों की मृत्यु दुष्टों के हाथों से होती है।

(महर्षि दयानन्द–सत्यार्थ प्रकाश तृ० स०)

वे नर और नारी धन्य हैं—

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील–स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालन युक्त, और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य भी मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रत रहते वे नर और नारी धन्य हैं।

—महर्षि दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश तृ० सं०)

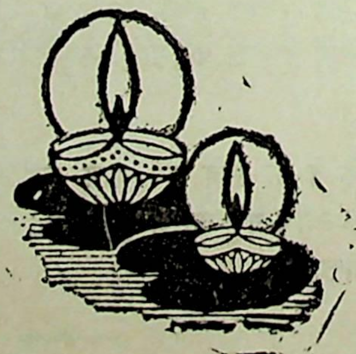
★ घृणा को केवल प्रेम से ही जीता जा सकता है—महात्मा गांधी

★ जो वासनायुक्त हो गया वही मुक्त है—विनोबा

★ जीवन फूल है और प्रेम उस की सुगन्ध है।

नाविरतो दुश्चरितान्नशान्तो नासमाहितः।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ कठोपमिषत् ॥

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिस को शान्ति नहीं, जिस का आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष चरितम्—

लोकमान्य तिलक—

सन् १९०७ में सूरत के क्रांग्रेस–अधिवेशन की समाप्ति पर लोकमान्य तिलक जब पूना लौटने के लिये वहाँ से स्टेशन जाने को तैयार हुए, तो लोगों ने सलाह दी—"आप पुलिस की मदद लेकर जाईये। अधिवेशन की सफलता से प्रोत्साहित हो, कुछ बदमाश रास्ते में जमा हैं और वे निश्चय ही आपको चोट पहुँचायेंगे।" तिलक ने सहज स्वभाव से कहा, "पुलिस की मदद लेकर पहुँचने बजाए, मैं अपने देश वासियों के हाथों मरना अधिक श्रेयस्कर समझूंगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मितभाषिता प्रसिद्ध थी। एक बार उनके एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से शर्त लगाई कि वह आचार्य जी से एक बार में पाँच या उससे भी अधिक शब्द कहलवा देगा। आचार्य जी के पास पहुँचकर कुछ बेधड़क बनने का प्रयास करते हुए वह बोला—"बावू जी, मैं ने इस से शर्त लगाई है कि मैं एक बार में कम से कम पाँच शब्द आप से कहलवा दूँगा।"

"तुम हार गए।" शुक्ल जी ने उत्तर दिया।

महात्मा गांधी—

आजादी मिलने के बाद, कुछ काँग्रेस कार्यकर्ता दिल्ली नगर में बापू का सौंपा हुआ कोई कार्य कर रहे थे। उन दिनों सारे भारत में ही हिन्दु–मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। एक दिन शाम को किसी कार्यकर्ता ने बापू को एक बड़ी दर्दनाक सूचना दी।

बापू बोले—"इस तरह इन घटनाओं का अन्त न होगा।" और बापू नें उपवास व्रत ले लिया। इस पर दिल्ली के कांग्रेस कार्यकर्ताओं को बड़ी चिन्ता हुई।

अगले दिन शाम के समय जब वे बापू के पास पहुँचे, तो बापू बहुत खुश नजर आए। उन्होंनें पूछा—"बापू, आज आप इतनें प्रसन्न क्यों नजर आ रहे हैं?" बापू बोले—"कल तक मैं केवल अन्याय की बातें सुनता था और सुनकर मौन हो जाता था। अब मुझ में अन्याय का विरोध करने की शक्ति आ गई है और मैं नें अन्याय को दूर करने के लिये कमर कस ली है। मेरे लिये इससे अधिक खुशी की बात और क्या हो सकती है?"



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं निशस्त्रीकरण—

—श्रीमती पूनम सागर

प्रवक्ता (इतिहास विभाग) मानविकी विभाग रुड़की वि० वि० रुड़की

राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य में पूर्णतया असफल हुआ और १६३६ में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग हो गई और द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय यह विचार राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में आया था कि युद्धों को रोकने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता है अतः युद्ध समाप्त होते ही राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध में भी प्रारम्भ से एक नवीन शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की योजना बननी प्रारम्भ हो गई थी। मित्रराष्ट्रों ने उसकी आवश्यकता जोरों से अनुभव की थी अतः युद्ध के दौरान ही अनेक संधियां कर भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की रूप रेखा बना ली गई। युद्ध के बाद उसे क्रियान्वित करना शेष था। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना एक दिन के प्रयत्न या किसी एक राष्ट्र का फल नहीं। इसके निर्माण का कार्य वर्षों पहले प्रारम्भ हो गया था तथा अनेक राष्ट्रों ने इसके निर्माण में सहयोग दिया था। अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल ने इसके निर्माण की पहल की।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म २४ अक्तूबर १६४५ को हो चुका था पर इसका प्रथम अधिवेशन १० फरवरी १६४६ को लन्दन के प्रसिद्ध वैस्टमिनिस्टर हाल में सम्पन्न हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान को चार्टर का नाम दिया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का सार उसकी प्रस्तावना में दे दिया गया है जिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य एवं सिद्धान्तों का उल्लेख कर दिया गया है। प्रस्तावना में लिखा है कि "हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के लोग यह दृढ़ निश्चय करते हैं कि हम भावी पीढ़ियों को युद्ध की भयंकरता से जिसने हमारे समय दो बार समस्त मानव समाज को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाई है बचाने का प्रयत्न करेंगे। हम मानव के मौलिक अधिकारों, मानव व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा तथा मूल्य में, स्त्री तथा पुरुषों के समान अधिकारों में तथा छोटे एवं बड़े राष्ट्रों की समानता में विश्वास प्रकट करते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों को स्थापित करने के उद्देश्य से जिसमें न्याय, संधियाँ और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्य साधनों के प्रति सम्मान की भावनाओं को स्थाई रूप प्रदान किया जा सके। सामाजिक प्रगति तथा अच्छे जीवन स्तर को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सहिष्णुता और शान्तिपूर्ण जीवन को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये अपनी शक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिये प्रयुक्त करने के लिये यह प्रतीक्षा करते हैं कि हम एक दूसरे के साथ उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमेशा सहयोग प्रदान करेंगे। इसलिये हमारी सरकारों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के इस घोषणा पत्र को स्वीकार किया है और हम एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम से ज्ञात होगा।" प्रस्तावना के प्रारम्भिक शब्दों, "हम संयुक्त राष्ट्र के लोग" से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संस्था विश्व के लोगों द्वारा अपनी भलाई के लिये बनाई गई है। इन शब्दों में प्रजातांत्रिक भावना प्रकट होती है परन्तु यथार्थ बात यह है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर सदस्यों राज्यों की सरकारों के प्रतिनिधियों द्वारा बनाया गया दस्तावेज है न कि विश्व जनता द्वारा निर्मित।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व के उन राष्ट्रों का संगठन है जिन्होंने चार्टर पर हस्ताक्षर किये हैं और यह शपथ ली है कि वे राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक योजनाओं के द्वारा विश्व शान्ति की स्थापना करेंगे। इस आज्ञा पत्र में, इस संस्था को किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखना, भावी पीढ़ी को भयंकर युद्धों की विभीषिका से मुक्त रखना, समान अधिकार तथा आत्म निर्णय के आधार पर राष्ट्रों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों और सहयोग को बढ़ावा देना, विश्व के आर्थिक, समाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य मानवतावादी समस्याओं का समाधान करना, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण वादविवादों द्वारा, अन्तर्राष्ट्रीय कानून और न्याय के आधार पर सुलझाना, इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ को केन्द्र बनाना -

Acc. to article 26 of U. N. O. Charter "In order to promote the establishment and maintenance of internal peace and security with the least diversion for armaments of the world human and economic res urce, the security Council shall be responsible for formulating...............plans to be submitted to the members of united Nations for the establishment of asystem for the regulation of armaments."

मार्गेन्थ्यु के अनुसार "निःशस्त्रीकरण ने राजनैतिक उत्तेजना को कम कर राजनैतिक अवस्था को सुधारा तथा एक दूसरे राष्ट्र की आदर भावना को उत्पन्न किया, इस प्रकार की निःशस्त्रीकरण की देन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करने में स्थापना करने में सहायता की। यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण देन थी तथापि यह स्पष्टतया अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा व्यवस्था की समस्या को सुलझाने का कोई व्यवहारिक हल न था। हथियारों की दौड़ समाप्त करने के लिये कुछ या सभी हथियारों को कम या समाप्त कर देना निःशस्त्रीकरण है।" निःशस्त्रीकरण वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है। इस समस्या पर मानव जाति का भावी भाग्य निर्भर करता है। निःशस्त्रीकरण विश्व शान्ति एवं सुरक्षा के भविष्य को निश्चित करने वाली समस्या है। राष्ट्रसंघ द्वारा की गई इस विषय में समस्त कोशिशें बेकार हुई और द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। ६ वर्ष तक इन भयानक अस्त्रशस्त्रों द्वारा मानव जाति का भारी विनाश होता रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही निःशस्त्रीकरण का प्रयास प्रारम्भ हो गया था पर विजेताओं ने पराजित देशों का एक तरफा निशस्त्रीकरण किया था। मित्र राष्ट्रों द्वारा रखी गई निःशस्त्रीकरण की सभी योजनायें आपसी मतभेदों के कारण असफल हो गई अतः पराजित देशों ने भी सब बन्धन तोड़ शस्त्रीकरण की ओर पग उठा लिया। परिणामस्वरूप विश्व को द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका सहनी पड़ी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण की समस्या पहले से कहीं अधिक जटिल हो गई। युद्ध से पूर्व तो यह प्रश्न पुराने अस्त्रशस्त्रों तक ही सीमित था पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होते होते अणुबम के प्रयोग ने इस प्रश्न को और भी उलझा दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक परमाणु बम का रहस्य केवल अमेरिका को ज्ञात था पर शीघ्र ही यह भेद रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और लालचीन को ज्ञात हो गया अतः विश्व के शान्ति प्रेमी लोगों ने माँग आरम्भ कर दी कि शस्त्रीकरण की दौड़ को समाप्त किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाये, शास्त्रों पर व्यय को कल्याणकारी कार्यों पर खर्च किया जाये। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की दूसरी धारा में निःशस्त्रीकरण का उल्लेख किया गया है। १६४६ के अन्तिम दिनों में सर्वप्रथम रूस ने निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर विचार करने के लिये प्रस्ताव रखा था। १४ सितम्बर १६४६ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने प्रस्ताव को पासकर सुरक्षा परिषद् को इस आशय का आदेश दिया कि वह हथियारबन्दी की होड़ को बन्द करे और निःशस्त्रीकरण के लिये योजना बनाये। इसके बाद दो आयोगों की स्थापना की गई। अणुशक्ति आयोग तथा परम्परागत शस्त्रास्त्रों के लिये आयोग का उद्देश्य था परमाणु बम के उत्पादन को सीमित करना तथा दूसरे आयोग का उद्देश्य था शस्त्रों तथा सेना को कम करने की योजना बनाना। परन्तु निःशस्त्रीकरण की समस्या कोई साधारण समस्या नही रही थी। उस समय अमेरिका परमाणु बम पर एकाधिकार रखता था, रूस अपने को कमजोर समझकर यह सुझाव रखता था कि अणुबम के उत्पादन पर शीघ्र नियन्त्रण रखना चाहिये तथा जितने बमों का निर्माण हो चुका है उन्हें जल्दी नष्ट कर देना चाहिये। उस समय तक शीतयुद्ध भी समाप्त हो चुका था और दुनिया के देश दो गुटों में बट चुके थे। निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में दोनों गुटों की ओर से तरह-तरह के प्रस्ताव रखे जाने लगे। अमेरिका ऐसे प्रस्ताव रखता था जो रूस को मान्य न हो और रूस ऐसे प्रस्ताव रखता था जो अमेरिका को स्वीकार न हो। अनेक सैन्य संगठन और संधियाँ कायम की जाने लगी और विश्वशान्ति का भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। U. N. O. द्वारा स्थापित आयोगों का कार्य ठप्प हो गया। अक्टूबर १६५० में अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन के सुझाव पर महासभा ने निःशस्त्रीकरण आयोग की रचना की गई पर इसका भी अच्छा परिणाम न निकला। १६५३ में गतिरोध बढ़ जाने पर महासभा के सुझाव पर १६५४ में एक उपसमिति का निर्माण हो गया जिसके रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा सदस्य बने। समिति इस प्रश्न पर कई वर्षों तक विचार करती रही पर परिणाम निराशाजनक रहे।

रूस यह कभी नहीं चाहता था कि निःशस्त्रीकरण हो। उसके द्वारा रखी गई सभी योजना केवल विश्व जनमत को आकर्षित करने के लिये थी और अव्यवहारिक थी। वे अमेरिका को शांतिविरोधी, साम्राज्यवादी, युद्धलोलुप कहकर बदनाम करने पर तुला था। किसी भी योजना पर दोनों गुटों में एकमत नहीं था और संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा रखे गये प्रस्ताव इस प्रकार युद्ध के सामने बेकार हो जाते थे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के १६४८ के अणुशक्ति आयोग की असफलता के बाद १६५२ में निःशस्त्रीकरण आयोग बना पर यह आयोग भी असफल हो गया क्योंकि इसकी सिफारिशों को रास्ट्रों ने मानने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रपति आइजनहावर ने U. N. O. की महासभा में ८ दिसम्बर १६५३ को निःशस्त्रीकरण की नवीन योजना रखी और सुझाव दिया कि सभी राष्ट्र अपनी-अपनी सेनाओं का विवरण दें तथा अन्य सेना सम्बन्धी सूचनाओं के विषय में परस्पर विनमय करें तथा इन सूचनाओं की जांच परस्पर खुली उड़ान द्वारा की गई पर रूस उनके लिये तैयार न हुआ। यह भी सुझाव था कि सभी राष्ट्र अपने अणुआयुधों को U. N. O. को सौंप दे। U, N. O. द्वारा अणु शक्ति के परीक्षण की व्यवस्था भी इस योजना के अन्दर थी पर रूस इसके लिये भी तैयार न था अतः यह योजना भी विफल हो गई।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१९५४ में U. N. O. की उपसमिति ने अक्टूबर १९५४ में अपने दो सुझाव सामान्य सभा के सामने रखे कि किसी राष्ट्र के पास इतनी न रहे जो दूसरे राष्ट्रों के लिये खतरा बना रहे। इस सुझाव के मानने में परेशानी यह थी कि सेना का अनुपात निर्धारित करने का आधार क्या रहे। फ्रांस व ब्रिटेन ने प्रस्ताव रखा कि अणुशक्ति का प्रयोग शान्ति के लिये किया जाय। समिति ने इस सुझाव को मानकर अपने प्रतिवेदन में सम्मिलित कर लिया पर यह प्रस्ताव भी निरर्थक था क्योंकि इसमें शस्त्रों के नाम दिये थे। इस रिपोर्ट को भी दोनों गुटों ने नहीं माना। निःशस्त्रीकरण की समस्या को सुलझाने के लिये एक शिखर सम्मेलन बुलाने की योजना बनी। इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ का आयोग अपना कार्य जारी रखे और यह विश्वास व्यक्त किया गया कि विश्वशान्ति एवं सुरक्षा के लिये निःशस्त्रीकरण अनिवार्य है और अणुशक्ति का प्रयोग मानव मात्र के कल्याण के लिये और आर्थिक उत्थान के लिये किया जाना आवश्यक है। अभी तक सभी शिखर सम्मेलन की अपेक्षा यह शिखर सम्मेलन अधिक सफल रहा।

२६ सितम्बर १९५७ को संघ की महासभा में भारत ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें निःशस्त्रीकरण आयोग व उपसमिति की सदस्य संख्या बढ़ाने तथा आणविक शस्त्रों को समाप्त करने पर जोर दिया था। यह प्रस्ताव महासभा ने स्वीकार कर लिया था पर महाशक्तियों ने इसमें रुचि नहीं ली।

३१ अक्टूबर १९५८ में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन आरम्भ हुआ। महासभा ने अपने प्रस्ताव में आग्रह किया कि जोनेवा सम्मेलन होने तक समस्त प्रकार के आणविक परिक्षण सदैव के लिये बन्द हो और ब्रिटेन व अमेरिका का विचार था कि परिक्षण एक वर्ष तक बन्द कर दिया जाये। यद्यपि जेनेवा सम्मेलन में कोई स्थाई समझौता न हुआ छोटे मोटे समझौते अवश्य हुये।

१९५९ में रूस के प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने संघ की महासभा में एक भाषण में कहा कि पूर्ण सर्वमान्य निःशस्त्रीकरण होना चाहिये तथा चार वर्ष में हर राष्ट्र इस प्रकार निःशस्त्रीकरण करे कि अन्त में उसके पास लड़ने का कोई साधन न रहे। राष्ट्र के पास इतनी ही सेना रहे जिससे वह आत्मरक्षा कर सके। रूस ने १२ लाख सेना की कटौती कर दी। इस प्रस्ताव का प्रत्येक राष्ट्र ने स्वागत किया। यद्यपि अधिकांश सदस्यों ने रूस के प्रस्ताव का समर्थन किया पर पश्चिम शक्तियों ने इसकी उपेक्षा की।

१९६० में निःशस्त्रीकरण की समस्या को सुलझाने के लिये पुनः जेनेवा सम्मेलन का आयोजन किया गया। जेनेवा में दो सम्मेलन एक साथ चले। एक दस राष्ट्रों का सम्मेलन था जो पूर्ण निःशस्त्रीकरण पर विचार कर रहा था, दूसरा सम्मेलन आणविक परीक्षणों को निषेध करने के सम्बन्ध में था। यह सम्मेलन भी दोनों गुटों के मतभेद के कारण कोई निर्णयन कर सका। इस प्रकार विश्व की दो महान् शक्तियों के कारण १९४६ से १९६० तक जितने भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुये, सुझाव रखे गये, महासभा में प्रस्ताव रखे गये, सफल नहीं हुये। अमेरिका एवं रूस सदैव एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे और एक दूसरे के प्रस्ताव को ठुकरा देते। रूस ने दस राष्ट्रों के आयोग का बहिष्कार कर दिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५ सितम्बर १९६१ को संघ की महासभा में संघ के महासचिव हैमरशील्ड को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते समय अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी ने प्रस्ताव रखा कि सभी राष्ट्र परीक्षण कर प्रतिबन्ध लगाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करें। अन्तरिक्ष में परमाणु प्रयोगों की रोकथाम हो। परमाणु वाहनों के उत्पादन पर रोक लगे। पर इन सब पर भी सदा की भांति कोई अमल नहीं हुआ। राष्ट्रपति कैनेडी का प्रस्ताव मार्च १९१२ में अमेरिकन प्रतिनिधि ने अठारहवें निःशस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवा में प्रस्तुत किया। पर इसी बीच क्यूबा के मामले में दोनों गुटों ने तीव्र मतभेद हो गये।

१० जून १९६३ को अमेरिका के राष्ट्रपति ने घोषणा की कि आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में रूस, अमेरिका व ब्रिटेन के प्रतिनिधियों में वार्ता होनी चाहिये। तीन राष्ट्रों ने मास्कों में २५ जुलाई १९६३ को संधि पर हस्ताक्षर किये। यह संधि अनिश्चित काल के लिये हुई थी और ३ महीने का नोटिस देकर कोई भी सदस्य इस सन्धि का परित्याग कर सकता था। संधि पर हस्ताक्षर कर्ताओं ने जल, थल, वायु में आणविक परीक्षण न करना स्वीकार किया। केवल पृथ्वी के अन्दर ही परीक्षण किये जा सकते थे। यह संधि परमाणु शस्त्रों के परिक्षण के नियमन की दशा में पहली सफलता थी।

जून १९६४ में जेनेवा में अमेरिका ने सम्मेलन में अपने कुछ सुझाव रखे। इसमें अमेरिका व रूस के बमवर्षक विमानों को नष्ट करने की भी योजना थी तथा साथ में आणविक शक्ति के कल्याणकारी कार्यों हेतु प्रयोग की भी व्यवस्था थी। इसी समय इग्लैंड के मजदूर दल के नेता हेरल्ड विल्सन ने भी निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी कुछ विचार दिये। ५ अक्टूबर १९६४ को काहिरा में तटस्थ राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें मांग की गई कि विश्व के सभी राज्यों का एक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन बुलाया जाये पर पश्चिमी राष्ट्रों ने इसका विरोध किया।

७ सितम्बर १९६४ को संघ की महासभा में रूसी विदेशमन्त्री ग्रोमिको ने अपना ११ सूत्री प्रस्ताव रखा। अमेरिकन गुट ने उसको अस्वीकार कर दिया। २३ जुलाई १९६५ को पुनः जेनेवा में किःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ, इसमें अभी तक सम्मेलन द्वारा किये गये प्रयासों की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। आगे भी इस विषय में कार्य हुये पर सभी अमेरिकन मतभेदों के कारण कुछ निर्णय न हो सका।

१६ नवम्बर १९६५ को ६१ तटस्थ देशों ने जिसमें भारत भी एक था, संघ की राजनीतिक समिति के काहिरा सम्मेलन को लागू किये जाने सम्बन्धी प्रस्ताव रखा जिसमें यह कहा गया कि साम्य-वादी चीन सहित १८ राष्ट्रों का सम्मेलन समस्या पर विचार करने हेतु १९६९ से पूर्व काहिरा में बुलाया जाये। इस प्रस्ताव को चीन ने ठुकरा दिया।

१७ राष्ट्रों का सम्मेलन २७ जनवरी १९६६ को शुरु हुआ। सम्मेलन प्रारम्भ होते ही महा-सचिव ने तार द्वारा मांग की कि परमाणु आयुद्धों के सम्बन्ध में इस बार अवश्य ही कोई कदम उठाया जाना चाहिये। पर दोनों गुटों में पुनः वादविवाद छिड़ गया और दोनों पक्षों के तीव्र मतभेद के कारण यह सम्मेलन भी असफल रहा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नवम्बर १९६६ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीतिक समिति ने परमाणु अस्त्रों के प्रसार तथा निर्माण सम्बन्धी नियन्त्रण के लिये एक समझौते का प्रस्ताव स्वीकार किया। संघ के ११० सदस्यों ने इसका समर्थन किया। इस प्रकार प्रस्तावित समझौते द्वारा परमाणु अस्त्र का निर्माण रोकना था। महा-समिति द्वारा पास उस समझौते को जेनेवा निःशस्त्रीकरण आयोग के सामने रखा गया। आयोग इसका मसविदा तैयार कर ही रहा था कि अमेरिका प्रतिनिधि फास्टर तथा रूसी प्रतिनिधि शाश्विन द्वारा दोनों देशों में मोटे तौर पर समझौता हो जाने की घोषणा कर दी। इस आश्चर्यजनक घोषणा से विश्व स्तब्ध रह गया।

२४ अप्रैल १९१७ को संयुक्त राष्टसंघ की महासभा का अधिवेशन इस प्रस्तावित संधि पर विचार करने के लिये बुलाया गया। सात माह तक विचार विमर्श होता रहा। उसके बाद ११ जून १९६८ को साधारण सभा की राजनैतिक समिति ने अच्छे बहुमत से इसे स्वीकृति दे दी। समिति को आशा थी कि इस संधि को अधिकांश राष्ट्र स्वीकृति दे देगें। १३ जून को यह प्रस्ताव महासभा में प्रस्तुत हुआ। इसके पक्ष में ९५ व विरोध में केवल ४ मत पड़े तथा २१ सदस्य तटस्थ रहे। तटस्थ रहने वाले राष्ट्रों में भारत व फ्रांस भी थे। विरोध करने वाले राष्ट्रों में अल्वानिया, क्यूबा, जाम्बिया तथा रोमानिया थे।

अनेक त्रुटियों से पूर्ण होने पर भी यह संधि ऐतिहासिक व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यदि इसी प्रकार निःशस्त्रीकरण की संधियों का क्रम बना रहे तो एक दिन यह समस्या अवश्य हल हो जायेगी। १९६८ की संधि से उत्साहित होकर १७ नवम्बर १९६९ को युद्ध के दृष्टिकोण से निर्मित शस्त्रों की समस्या लेकर अमेरिका व रूस की वार्ता फिनलैंड की राजधानी हैल्सिकी में हुई। इस वार्ता के साथ दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने पियना में वार्ता का चौथा दौर प्रारम्भ किया। यह आशा की गई कि अब दोनों महादेश निःशस्त्रीकरण की समस्या को गम्भीरतापूर्वक ले रहे हैं। इन देशों ने यह समझ लिया है कि आपस में टकराना उचित न होगा। १ अक्टूबर १९७२ में दोनों देशों ने परमाणु शक्ति में और न वृद्धि करने का समझौता किया,जो बहुत महत्वपूर्ण था तथा निःशस्त्रीकरण को समस्या को सुलझाने हेतु ठोस पग था।

१ अक्टूबर १९७२ की रूस अमेरिका संधि से यह विश्वास किया जाने लगा कि दोनों ही देश अब निःशस्त्रीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। १९७४ से पूर्व आणविक शस्त्रों से लैस ५ राष्ट्र रूस, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन एवं चीन ही थे। १८ मई १९७४ को भारत ने आणविक योजना के अन्तर्गत प्रथम बार परमाणु बम का विस्फोट किया। इससे विश्व में बड़ा आश्चर्य हुआ। पाकिस्तान तो भय के कारण कांप उठा और अमेरिका से अणुबम मांगने लगा क्योंकि उसे भारत से खतरा पैदा हो गया। भारत की सरकार ने घोषणा की कि वह आणविक शक्ति का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों में करेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ कोई संस्था नहीं है। अतः उसे विश्व राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ का विशेष अंग सुरक्षापरिषद् है और विश्व की शान्ति एवं सुरक्षा की जिम्मेदारी उसी पर है पर वीटो के विशेषाधिकार से वह सफलतापू क अपने कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती है। महासभा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को एकता प्रस्ताव से महान् शक्ति प्राप्त हो गई है और वह सुरक्षापरिषद् के अधूरे कार्य पूर्ण कर सकती है। यद्यपि यह बात तो सही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है पर स्थाई शान्ति अभी स्थापित नहीं हुई है। आज के युग में गुटबन्दी का साम्राज्य है। ये दोनों गुट साम्यवादी और पूंजीवादी सदैव एक दूसरे पर आवाजें कसा करते हैं। इन्हें अपने हित विश्वहित की अपेक्षा अधिक प्रिय हैं। संघ की महासभा इन गुटों का संघर्ष स्थल है। पाकयुद्ध इतका भीषण हो सकता है कि छोटे राज्य भयभीत हो जाते हैं। यह अवश्य है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्यकाल राष्ट्रसंघ से लम्बा हो गया है पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अब कभी युद्ध न होगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ यद्यपि राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है पर उसके निर्णय अभी बाध्यकारी नहीं। शक्तियों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई नियन्त्रण नही है, विनाशकारी भयानक अस्त्रशस्त्र का भय ही उन्हें युद्धों में कूदने से रोके हुये हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी राष्ट्रसंघ के मार्ग पर जा रहा है अभी कोहिमा, वियतनाम, अरब इजराइल एवं पाकिस्तान, भारत के ही छोटे मोटे झगड़े हुए हैं। जिस दिन रूस और अमेरिका में ठन गई उस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ कुछ न कर पायेगा। विश्व के सिर पर हमेशा 'डेमोक्लीज की तलवार' लटकती रहती है।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपनिषदां ब्रह्मविद्यात्वम्—

प्रो० मनुदेव बन्धु, प्राध्यापक वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

उपनिषत्साहित्यं संस्कृतवाङ्मयेऽतीव गौरवास्पदम् । ब्रह्मविद्या–अध्यात्मविद्या पराविद्या चेति नाम्ना इमाः कीर्त्यन्ते । उक्तञ्च "द्वेविद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।" तन्न प्रधानतः कर्मकाण्डपराणां धर्मज्ञानसाधनीभूतानां षडङ्गोपेतानां वेदानामपराविद्यात्वम् परमपुरुषार्थसाधनीभूतानां ब्रह्मज्ञानकाण्डपराणामुपनिषदाञ्च पराविद्यात्वमिति विचारः ।

उपनिषदः खलु वेदान्तसंज्ञयाऽपि प्रसिद्धाः । सेयं संघा तासां वेदस्य अन्तं वेदान्तमित्यर्थमवष्टभ्येति प्रतीयते । सा च यजुवदस्य चतुर्विंशतितमादन्तिमादध्यादुपनताया "ईशावास्योपनिषद" एवोपनिषदामारम्भणहेतुत्वादुपपद्यते । उपनिषच्छब्दोऽयं विशरणगत्यवसादनार्थात् सदेर्धातोः क्विप्प्रत्ययान्तान्निष्पन्न इत्युक्तपूर्वम् । सेयमविद्यादिसंसारबीजविशरणपटीयसी ब्रह्मविद्यायद्वाच्या उपनिषद् विद्या वेदमूलकत्वाद् वैदिकानेव राद्धान्तान् प्रतिपादयन्ती न खलु कथञ्चिदंशतोऽपि ततः प्रस्खलन्ती विलसति । परन्तु शब्दमात्रतो न जात्वर्थतोऽवभासमानं, यन्मतद्वैविध्यं श्रुतिमूलके ग्रन्थे न प्रयत्नसहस्रेणापि तच्छक्यं सम्भावयितुम् । वस्तुतो यथार्थमर्थमपवगच्छतामेव किञ्चिद्विभ्रमपिहितचेतसामेवोपनिषत्सु विरुद्धा विभिन्नाश्च पन्थानः सन्तीति मतमभिमतं सम्भवेन्न कदाचित्प्रज्ञानेन्मीलितचक्षुषां सचेतसाम् । यतो ज्ञानं हि खलु तत्त्वनिष्ठं न कर्हिचिद् बुद्धिनिष्ठम् । बुद्धिभेदात् तत्वभेदमुन्मत्तं बिना को नाम उररीकुयात् ?

उपनिषत्सु आख्यानरूपेण बहवो दिव्या उपदेशाः समुपलभ्यन्ते । उपनिषद्रसरसिकाः सहृदयालवः श्रद्धालवः प्रणिभालयन्तु तावत् । तथा च कठोपनिषदि प्रेत्यभावविषयकं तत्त्वमाख्यानरूपेण प्रतिपादितम् । यच्च नाचिकेतमुपाख्याननाम्ना प्रसिद्धम् । तद्यथा नचिकेता नाम कश्चिदृषिकुमारः कदाचिद् यमलोकं गतः । तत्र यमेनाभ्यर्थितः स यमाद्वरत्रयमवृणोत् । तेषु वरेषु तृतीयो वरः मरणान्तरं मनुष्योऽस्ति न चेत्येतज्जिज्ञासात्मकः । तन्निशम्य यमस्तं प्रत्याह :—

"देवैरत्रापि विकित्सितं पुरा नाणुरेष धर्मः, तस्मादन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्वेति ।" इत्थ विवृण्वन् नानाविधैः रमणीयरूपैः स्पृहणीयभोगवस्तुभिः प्रलोभयन्नपि यमो यदा नचिकेतसो दृढतरं चेतो विचालयितुमशक्नोत् तस्य च अनासक्त्या भक्त्या च सन्तुष्टस्तस्मै जननमरणे केवलं विकृतिरूपे, ब्रह्मज्ञानेनैव ते तीर्त्वा पुरुषः मोक्षपदमुपैतीत्येवमादिलक्षणां ब्रह्मविद्यामुपदिदेशः—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते, कामा तेऽस्य हृदिस्थिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ क०ठ० ६-१४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

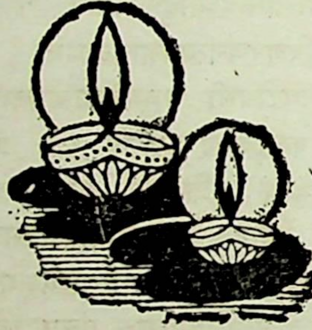
यथा द्वैतवादिनः स्वपक्षे—

"ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्यलोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे ।
छायातपौ ब्रह्मबिदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ।।"

इत्युदाहरन्ति । तथा द्वैतवादविरोधिनोऽपि स्वपक्षे उपनिषदामन्यानि वचांसि पुरस्कुर्वन्ति । द्वैतवादं शब्दतः खण्डयन्तः आहुः—

"मनसैवेदमातव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।

इत्थमुपनिषदो ब्रह्म विद्यात्वमम्युपपन्नम् ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय शिक्षा को आर्यसमाज की देन—

—डा० भवानी लाल भारतीय, पी–एच० डी०

लाला लाजपतराय ने अपनी पुस्तक "दुःखी–भारत" में लिखा है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में एक व्यवस्थित शिक्षा–प्रणाली प्रचलित थी। गांव-गांव में पाठशालाएं स्थापित थीं। जिनमें छात्र व्यवस्थित रूप से विभिन्न विद्याओं और शास्त्रों का अभ्यास करते थे। कालान्तर में देश में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के स्थापित होने पर लार्ड मैकाले ने देश की शिक्षानीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। प्रचलित भारतीय शिक्षा–पद्धति का मूलोच्छेद कर अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली की स्थापना इसी ध्येय से की गयी थी कि देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जो रंग और आकृति में चाहे भारतीय हो, परन्तु आचार–विचार, बुद्धि और मन से अंग्रेज होने का दम्भ भरे। लार्ड मैकाले को अपनी शिक्षा के सफल होने का पूर्ण विश्वास था, तभी तो १८३८ ई० में अपने पिता के नाम लिखे गये एक पत्र में उन्होंने यह विश्ववास व्यक्त किया "जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा व विश्वास खो बैठता है। केवल कुछ दिखावे के रूप में मानते हैं और अनेक शुद्ध ईश्वरवादी बन जाते हैं। कतिपय अन्य ईसाई हो जाते हैं। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा की हमारी योजना पूरी तरह काम में लायी गयी तो अब से ३० वर्ष पश्चात् बंगाल के कुलीन घरानों में कोई भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा।"

भारत की शिक्षा–नीति को पाश्चात्य ढांचे के अनुसार ढालने का प्रयास अंग्रेज शासकों ने तो किया ही, ब्रह्म समाज के प्रवर्तक और भारतीय नवजागरण के सूत्रधार राजा राममोहन राय ने लार्ड मैकाले के ही स्वर मिलाकर अंग्रेजी शिक्षापद्धति का ही गौरव गान किया। यह उस समय की बात है जब बंगाल सरकार का विचार कलकत्ता में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना करने का था। प्राचीन शिक्षा–पद्धति के पक्षपाती लोग इस योजना से प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। परन्तु राममोहन राय की दृष्टि में संस्कृत-शिक्षा का प्रचार अनावश्यक और प्रतिगामी कदम था। उन्होंने इस योजना के विरोध में एक पत्र तत्कालीन भारतीय गवर्नर-जनरल लार्ड एमहर्स्ट को दिया। पत्र में संस्कृत शिक्षा के विषय में जो विचार व्यवत किये गये हैं उन्हें पढ़कर हमें खेद व आश्चर्य होता है। पत्र के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा, हमें यह ज्ञात हुआ है कि सरकार पण्डितों के नियन्त्रण में एक संस्कृत विद्यालय स्थापित करना चाहती है जिसमें प्रचलित परिपाटी पर संस्कृत की शिक्षा दी जायेगी। इस विद्यालय से यही आशा की जा सकती है कि इसमें जो छात्र शिक्षा प्राप्त करेंगे उनके मस्तिष्क में व्याकरण के सूक्ष्म नियमों तथा दर्शन–शास्त्र की जटिलताओं को ठूंस-ठूंसकर भर दिया जायेगा, जिनका उन छात्रों तथा समाज के लिये कोई उपयोग नहीं है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन को क्लिष्ट बताते हुए उसी पत्र में आगे लिखा गया "संस्कृत भाषा इतनी कठिन है कि उसे सीखने के लिये लगभग सारा जीवन लगाना पड़ता है। ज्ञान (बुद्धि) के मार्ग में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह शिक्षा कई युगों से बाधक सिद्ध हो रही है। इसे सीखने पर जो लाभ होता है वह इसको सीखने में किये गये परिश्रम की तुलना में नगण्य है।" इस पत्र में आगे क्रमशः संस्कृत व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा, न्याय आदि विषयों के शास्त्रीय अध्ययन की निरर्थकता तथा निस्सारता का प्रतिपादन करते हुए अन्त में उपसंहार में लिखा था, "यह संस्कृत शिक्षाप्रणाली देश को अन्धकार में गिरा देगी। क्या यही ब्रिटिश सरकारी नीति है।" राजा राममोहन राय के इस पत्र ने मैकाले की शिक्षा को विजय ही प्रतिध्वनित होती है।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत–शिक्षा विषयक देन—

जिस शताब्दी में राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली के प्रचलन का हार्दिक समर्थन किया, नव–जागरण के उसी युग में नवोदय के एक अन्य सूत्रधार, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के विषय में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करते हुए परम्परागत शिक्षा–प्रणाली के पुनरुत्थान का अभूतपूर्व प्रयास किया। शिक्षा प्रणाली के रूप में स्वामी दयानन्द ने शिक्षा विषयक जो सूत्र अपने लेखों, ग्रन्थों तथा वक्तव्यों में दिये हैं उनका संकलन और आकलन किया जाना आवश्यक है। अपने प्रमुख ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" के द्वितीय व तृतीय समुल्लास उन्होंने बालकों के लालन-पालन व शिक्षा विषयक ही लिखे हैं। "अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामः"—इस सूत्र से द्वितीय समुल्लास का प्रारम्भ होता है। "अथाऽध्यापनविधि व्याख्यास्यामः" के साथ तृतीय समुल्लास की रचना आरम्भ होती है। दोनों अध्यायों में शिक्षा विषयक भारतीय शास्त्रीय आर्य–परिपाटी का विस्तृत विवेचन करते हुए स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मचर्य आश्रम, स्वाध्याय और प्रवचन, अध्ययन समाप्ति के पश्चात् दीक्षांत अनुशासन, संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय का अध्ययनक्रम और पाठ-विधि, त्याज्य और ग्राह्य पुस्तकें, स्त्रियों और शुद्रों का अधिकार, और स्त्री-शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया है। संस्कृत के पठन-पाठन के लिये स्वामी दयानन्द ने एक विशिष्ट क्रम निर्धारित किया था। इसका उल्लेख "सत्यार्थ प्रकाश" के अतिरिक्त "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के पठन–पाठन विषय तथा "संस्कार विधि" के वेदारम्भ संस्कार में भी किया है। पठन–पाठन प्रणाली का विस्तृत निर्देश यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि स्वामी दयानन्द संस्कृत शिक्षा–प्रणाली के मर्मज्ञ थे तथा वे उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे।

अपनी इस पाठ–विधि को क्रियान्वित करने के लिये स्वामी जी ने स्वयं उत्तरप्रदेश के कई नगरों में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। धनीवर्ग के लोगों को उन्होंने पाठशाला संस्थापन के पुनीत कार्य में आर्थिक सहायता देने के लिये प्रेरित किया। इन पाठशालाओं का आदर्श प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के अनुरूप रखा गया, जिसके अनुसार छात्र और अध्यापक एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहकर चरित्र–निर्माण के साथ-साथ शास्त्राध्ययन में प्रवृत्त हो सकें।

स्वामी दयानन्द ने ये पाठशालाएं कासगंज, फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, छालेसर, काशी आदि स्थानों में स्थापित की। योग्य अध्यापकों के अभाव तथा आर्य ग्रन्थों के पठन–पाठन में छात्रों द्वारा विशेष अभि–रुचि व्यक्त न किये जाने के कारण स्वामी जी को जीवनकाल में ही इन पाठशालाओं को बन्द करना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पड़ा था, तथापि यह स्वीकार करना पडेगा कि संस्कृत शिक्षा के प्रचार हेतु स्वामी जी का पाठशाला संस्थापन का यह कार्य वस्तुतः श्लाधनीय था। इन पाठशालाओं में ही आर्यसमाज द्वारा कालान्तर में स्थापित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के बीज छिपे थे, जिसने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित किया।

स्वामी दयानन्द ने संस्कृत शिक्षा प्रणाली को सुगम बनाने के लिये पठन-पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत कतिपय पाठ्यग्रन्थ भी लिखे। ऐसे ग्रन्थों में "संस्कृत वाक्य प्रबोध" 'व्यवहार-भानु' तथा "वेदांग-प्रकाश" के चौदह भाग उल्लेखनीय है संस्कृत वाक्य प्रबोध की रचना छात्रों में संस्कृत संभाषण में रुचि उत्पन्न करने तथा उनमें दैनन्दिन विषयों पर संस्कृत के माध्यम से सुगमरीत्या वार्तालाप करने की क्षमता उत्पन्न करने हेतु थी। "व्यहार भानु" छात्रों और अध्यापकों की आचार संहिता है, जिसमें गुरु-शिष्य सम्बन्ध का विवेचन एवं उनके आचार-व्यवहार तथा नीति रीति-विषयक स्वर्णिम सूत्रों का गुम्फन हुआ है "वेदाङ्ग-प्रकाश" पाणिनीय व्याकरण के विविध अङ्गों को सुगम रूप से सीखने का अद्भुत् ग्रन्थ है।

स्वामी दयानन्द केवल पुस्तकीय ज्ञान के ही पक्षपाती नहीं थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवकों को उद्योग, कला कौशल तथा तकनीकी व्यवस्थाओं की शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नहीं होगा। इसी दृष्टि से कुछ युवकों को जर्मनी भेजा, ताकि वहां रहकर वे औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें तथा देश की सम्पन्नता में अपना योगदान कर सके।

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सिद्धान्त—

संक्षेप में स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषयक सूत्रों को इस प्रकार निबद्ध किया जा सकता है :—

१—विद्यार्थी का मुख्य प्रयोजन शास्त्राभ्यास के साथ चरित्र निर्माण है। चरित्र निर्माण की शिक्षा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ही सम्भव है। अतः प्राचीन रीति नीति के गुरुकुलों की स्थापना आवश्यक है।

२—पाठ्य ग्रन्थों में उन्हीं पुस्तकों का समावेश होना चाहिये जो साक्षातृकृत धर्मा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियां है। अनार्ष ग्रन्थ पठन-पाठन क्रम में समाविष्ट नहीं होने चाहिये।

३—संस्कृत शास्त्रों और ईश्वरीय ज्ञानवेद की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

४—शास्त्र के साथ प्राविधिक, कला कौशल की शिक्षा भी जीवन यापन की दृष्टि से आवश्यक है।

५—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

६—बालक और बालिकाओं का सहशिक्षण चरित्र विधातक, फलतः हानिकारक है।

७—कन्या-शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बालकों की शिक्षा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

८—शिक्षा के क्षेत्र में राजा और रंक, गरीब अमीर का भेदभाव अवांछनीय है। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का समान रूप से अधिकार मिलना चाहिये।

९—अवसर और अनुकूलता होने पर विदेशी भाषाएं सीखना भी वांछनीय है।

१०—शिक्षा के द्वारा स्वाभिमान, स्वदेश प्रेम, ईश्वर-भक्ति और स्वावलंबन जैसे गुणों का विकास किया जाना अपेक्षित है।

स्वामी जी के दिवंगत होने के पश्चात् उनके स्थानापन्न आर्यसमाज ने अपने शिक्षा विषयक कार्यक्रम को इसी आधार पर मूर्त रूप दिया।

डी० ए० वी० कॉलेज की शिक्षा पद्धति—

महर्षि दयानन्द के देहान्त के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में १८८६ ई० में डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर की स्थापना हुई, जो शीघ्र ही पंजाब की एक शिक्षा का एक अद्वितीय संस्थान बन गया। महात्मा हंसराज जैसे प्रवीण शिक्षा शास्त्री ने अपना समग्र जीवन अर्पित कर डी. ए. वी. कॉलेज को भारतीय शिक्षा का एक सफल केन्द्र बना दिया। डी. ए. वी. कॉलेज को विकसित करने में लाला लाजपतराय तथा पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे आर्यसमाज के मूर्धन्य चिन्तकों का हाथ रहा है। शीघ्र ही देश भर में डी. ए. वी. संस्थाओं का जाल बिछ गया। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक संस्थाएं जहां पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आवश्यक तत्त्वों की उपेक्षा नहीं करती, वहाँ वे भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म की आधारभूत संस्कृत भाषा तथा आर्यशास्त्रों के शिक्षण भी सुचारू रूप से व्यवस्था करती है।

डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर की अनेक विशिष्ट उपलब्धियां रहीं। वहां का लालचन्द पुस्तकालय संस्कृत के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का अद्वितीय संग्रह था। डी. ए. वी. कॉलेज, लाहौर का पृथक् शोधविभाग था जिसके निदेशक के रूप में सुप्रसिद्ध प्राच्य विद्याविशारद पं० भगवद्दत तथा पद्मभूषण आचार्य विश्वबन्धु ने अनेक प्राचीन महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन किया।

पंजाब के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के कानपुर, देहरादून, दिल्ली, वाराणसी तथा दक्षिण के शोलापुर आदि नगरों में भी कालान्तर में डी. ए. वी. कॉलेजों को स्थापना हुई।

कानपुर का डी. ए. वी. कॉलेज तो उत्तर प्रदेश का वृहत्तम शिक्षण संस्थान है जिसमें सभी संकायों का विधिवत् अध्ययन होता हैं। डी. ए. वी. कॉलेज आन्दोलन ने देश को महात्मा पं० हंसराज, प्रिंसिपल सांईस, दार्शनिक प्रवर डा० दीवान चन्द जैसे प्रख्यात शिक्षा शास्त्री प्रदान किये। विभिन्न विश्वविद्यालयों के उप कुलपति-पद का योग्यतापूर्ण निर्वाह करने वाले (स्वर्गीय) प्रिंसिपल सूर्यभान (उपकुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय) तथा डा० दुःखनराम (भूतपूर्व उपकुलपति, बिहार विश्वविद्यालय) आदि शिक्षा-विशेषज्ञ आर्यसमाज के डी. ए. वी. कॉलेज की ही देन है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली—

वस्तुतः डी. ए. वी. कॉलेज की स्थापना के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में पौरस्त्य और पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय करने की दृष्टि ही प्रधान थी। चेष्टा यह की गयी थी कि इन शिक्षा संस्थाओं में प्राचीन संस्कृत भाषा, दर्शन, साहित्य तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का सांगोपांग अध्ययन कराया जाये, साथ ही भौतिक-विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन भी अभीष्ट समझा गया। परन्तु आर्यसमाज के शिक्षा समीक्षकों ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि डी. ए. वी. कॉलेज के संचालक पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान तथा अंग्रेजी के अध्यापन के प्रति जितने सचेष्ट और आग्रहशील हैं उतने वैदिक वाङ्मय और संस्कृत साहित्य के प्रति नहीं।

इसी दुविधाजनक स्थिति ने गुरुकुल स्थापना के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्कालीन प्रधान महात्मा मुन्शीराम को प्रेरित किया। महात्मा जी स्वामी दयानन्द के शिक्षा सिद्धान्तों को मूर्त रूप प्रदान करने के हेतु प्राण पण से जुट गये। गुरुकुल के लिये उन्हें यथेष्ट आर्थिक सहायता अविलम्ब उपलब्ध हो गयी और उन्होंने गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना कर दी, जो कुछ समय पश्चात् मुन्शी अमनसिंह जी द्वारा गंगा पार की रेती के कांगड़ी ग्राम के निकटस्थ अरण्य में चला गया।

स्वामी श्रद्धानन्द के तप, त्याग और श्रम ने गुरुकुल कांगड़ी को देश की एक सर्वोत्तम राष्ट्रीय शिक्षण संस्था बना दिया, जो प्राचीन और आधुनिक शिक्षा प्रणाली का एक सर्वोत्तम सांमजस्य था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मूल सूत्र निम्नस्थ हैं।

१—यह एक समन्वित शिक्षा-पद्धति है, जिसमें प्राचीन शिक्षा प्रणाली को आधार बनाकर छात्र के वैयक्तिक, चारित्रिक गुणों का विकास किया जाता है। बालक में विद्यमान शक्तियों को विकसित करने का पूर्ण अवसर इस शिक्षण प्रणाली में उपलब्ध होता है। छात्र और अध्यापक का निकटतम सम्पर्क गुरुकुल शिक्षा का एक प्रधान तत्व है। प्राचीन शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ नवीन ज्ञान विज्ञान एवं पाश्चात्य भाषा और दर्शन की समन्वित शिक्षा गुरुकुल की एक निजी विशेषता है।

२—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को दशाब्दियों पूर्व ही हल कर लिया था। गुरुकुल शिक्षा की एक विशेषता है बालक की मातृभाषा (राष्ट्रभाषा हिन्दी) के माध्यम से उच्च-स्तरीय ज्ञान विज्ञान का शिक्षण। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आज स्वतन्त्रा प्राप्ति के ३५ वर्ष पश्चात् भी जब हमारे शिक्षाशास्त्री शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियों और विपत्तियों की अशंका करते हैं जब कि गुरुकुल कांगड़ी ने कई वर्ष पूर्व ही स्नातक स्तर पर विज्ञान की शिक्षा देने हेतु उच्च कोटि की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कर लिया था। विज्ञान के जो पाठ्य ग्रन्थ उस समय निर्मित हुए उनके नाम यहां दिये जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी कैमिस्ट्री	प्रो० महेशचरण सिंह
विकासवाद	प्रो० विनायक गणेश साठे
भौतिकी और रसायन	प्रो० रामशरणदास सक्सेना
गुणात्मक विश्लेषण	प्रो० रामशरणदास सक्सेना
वनस्पतिशास्त्र	प्रो० महेशचरण सिंह
अर्थशास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
राजनीतिशास्त्र	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार
अर्थशास्त्र	प्रो० बालकृष्ण
राजनीतिशास्त्र	प्रो० बालकृष्ण
मनोविज्ञान	प्रो० सुधाकर

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार तथा प्रो० हरिदत्त वेदालङ्कार ने राजनीति, अर्थशास्त्र आदि विभिन्न समाजशास्त्रीय विषयों पर अधुनातन महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है।

३—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का एक ध्येय जहाँ चरित्र की दिशा में छात्रों का उचित मार्ग दर्शन करना था, वहाँ उसका एक मुख्य प्रयोजन छात्र समुदाय में राष्ट्रीय भावनाओं की अभिवृद्धि और देशभक्ति के भावों को उदीप्त करना भी रहा। यही कारण है कि ब्रिटिश शासकों ने इन शिक्षण संस्थाओं को हमेशा वक्र दृष्टि से देखा। गुरुकुल शिक्षा संचालकों का भी स्वाभिमान अडिग रहा। अपनी शिक्षा नीति में वे विदेशी शासकों का हस्तक्षेप कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते थे। फलतः उन्होंने गौरांग शासकों से कभी आर्थिक अनुदान की न तो याचना की और न ही किसी अन्य प्रकार की सहायता को स्वीकार किया। अंग्रेज प्रशासक गुरुकुलों के प्रति एक बार तो इतने अधिक शंकाकुल हो गये थे कि तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड और संयुक्त प्रांत के तत्कालीन गवर्नर जेम्स मेस्टन को गुरुकुल कांगड़ी की यात्रा कर उसके संचालक महात्मा मुन्शीराम के समक्ष अपनी शंकाओं का समाधान करना पड़ा था।

गुरुकुल कांगड़ी के ही अनुकरण पर कालान्तर में गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, चित्तौडगढ़, गुरुकुल झज्जर आदि की स्थापना हुई। संस्कृत और शास्त्रों के सुयोग्य और ख्याति प्राप्त विद्वान् इन गुरुकुलों से निकले हैं। देश, धर्म, समाज, भाषा और संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उसका विशद और यथार्थ समीक्षण अभी भविष्य की वस्तु है। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों में पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति, पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार (चतुर्वेद भाष्यकार), पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार (निरुक्त भाष्यकार) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने दर्शनों के महान् पं० उदयवीर शास्त्री विद्याभास्कर, डा० सूर्यकान्त, डा० हरिदत शास्त्री, पं० देवदत्त शर्मोपाध्याय तथा संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् और प्रसिद्ध कवि पं० दिलीपदत्त शर्मोपाध्याय जैसी प्रतिभाएं देश को प्रदान की हैं। गुरुकुल वृन्दावन के उल्लेख योग्य स्नातकों में स्वर्गीय पं० द्विजेन्द्रनाथ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

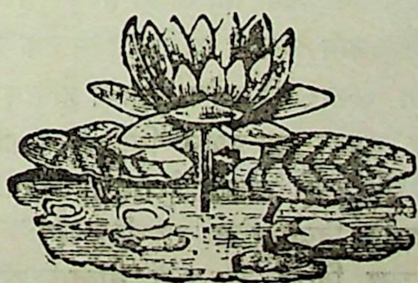
शास्त्री, पं० धर्मेन्द्रनाथशास्त्री, भारतीय साहित्यशास्त्र और दर्शन शास्त्रके आकर ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और व्याख्या करने वाले स्वर्गीय पं० विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि तथा संस्कृत में "दयानन्द दिग्विजय" जैसे सर्व लक्षणान्वित महाकाव्य प्रणेता अद्‌भुत् कवि, महाकवि मेधाव्रताचार्य के नाम महत्वपूर्ण हैं।

उपसंहार—

गुरुकुलों की स्थापना के साथ-साथ शतशः विद्यालयों, संस्कृत पाठशालाओं तथा प्रौढ़ शिक्षण संस्थाओं, और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना और संचालन भी आर्यसमाज की शिक्षा विषयक एक महत्वपूर्ण देन है। नारी शिक्षा का क्षेत्र भी आर्यसमाज द्वारा उपेक्षित नहीं रहा। जिस समय देश के पुराणपन्थी और रूढ़िवादी लोग कन्या–शिक्षा को शंकाकुल दृष्टि से देखते थे तब आर्यसमाज ने कन्याओं की सर्वोच्च शिक्षा हेतु उच्चकोटि के गुरुकुल महाविद्यालय और कन्या कॉलेजों की स्थापना की। जालंधर कन्या महाविद्यालय, देहरादून और हाथरस के कन्या गुरुकुल तथा बडौदा का आर्य कन्या महाविद्यालय व पोरबन्दर कन्या गुरुकुल महाविद्यालय इसी प्रकार के सम्पन्न शिक्षण संस्थान है। आज आर्यसमाज का करोडों रुपया शिक्षा कार्य में व्यय हो रहा है और उसकी सर्वोच्च संस्थाएं इन शिक्षण संस्थाओं का योग्यतापूर्वक संचालन कर रही है। कन्या शिक्षण की भांति ही दलित वर्ग के लोगों की शिक्षा का आयोजन भी सर्वप्रथम आर्यसभाज ने ही किया। पं० आत्माराम अमृतसरी बडोदा राज्य में दलित शिक्षा का जो प्रचार किया वह समाज सुधार इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

अन्त में फादर इण्डिया के लेखक श्री रंगाअयर के शब्दों में दी गई आर्यसमाज के शिक्षा विषयक कार्य का सिंहावलोकन करने के पश्चात् इस सम्मति को सर्वथा औचित्यपूर्ण ही समझते हैं

अर्थात् आर्यसमाज के विद्यालयों का उद्देश्य राष्ट्रीयता की जाग्रति करना रहा है। उनके समालोचक भी यह स्वीकार करते हैं कि वे असहयोग के दिनों में अचानक स्थापित हुए उन अल्पजीवी राष्ट्रीय स्कूलों से भिन्न वास्तविक शिक्षण संस्थाएं हैं।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाभाष्योक्त ज्ञापक और उनके मूल स्रोत्रों का अध्ययन—

—डा० रामप्रकाश शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

'भवत्याक्षर समाम्नायिकेन धात्वादिस्थस्य ग्रहणम्' इति ।

'अइउण् सूत्र में उपदिश्यमान् अकार विवृतप्रयत्नक है । अतः अच् प्रत्याहार में आने वाला आकार भी विवृतप्रयत्नक ही है । यदि अच् प्रत्याहार में आने वाला अकार विवृतप्रयत्नक नहीं माना जायगा, तो दीर्घाकार आदि के साथ ह्रस्व अकार की स्वर्ण संज्ञा न होने कारण अच् प्रत्याहार में दीर्घाकारादि का ग्रहण नहीं हो । सकेगा । ह्रस्व अकार का प्रयत्न संवृत माना गया है । दीर्घाकारादि का प्रयत्न विवृत माना गया है । दोनों में प्रयत्न–भेद हो जाने के कारण 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्' सूत्र द्वारा सवर्ण संज्ञा नहीं होगी । इस सूत्र के अनुसार जिन वर्णो के स्थान तथा अभ्यान्तर प्रयन्त तुल्य होते हैं उन्हीं वर्णो की परस्पर सर्वण संज्ञा हो सकती है । परस्पर सवर्ण संज्ञा न होने के कारण ह्रस्व अकार से दीर्घादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा । 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' सूत्र द्वारा अविधीयमान् अण् (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ य व ल्) अपने सवर्णो का ही बोधन करते हैं । यदि अकार की सवर्ण संज्ञा दीर्घाकारादि के साथ नहीं होगी तो अकार के ग्रहण से दीर्घाकारादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा । इस तरह खट्वा+आढ़कम्=खट्वाढ़कम् यहां 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ नहीं सिद्ध हो सकेगा । अतः अइउण् सूत्र–घटक अकार को विवृत प्रयत्नक स्वीकार किया जाना चाहिये । जिससे प्रत्याहारों में आने वाले अकार से दीर्घाकारादि का ग्रहण हो सके ।

जिस तरह अइउण् सूत्र में विद्यमान अकार का विवृत प्रयत्न होना आवश्यक है, उसी तरह सर्वत्र धातु प्रातिपादिक, प्रत्यय, निपात में विद्यमान अकार को विवृतप्रयत्नक ही होना चाहिये, अन्यथा प्रत्याहार अकार के साथ धात्वादिस्थ संवृत अकार की सर्वण संज्ञा न होने के कारण अच्–प्रत्याहार–सम्बन्धी कार्य सम्भव नहीं होगा । धात्वादिस्थ अकार का प्रयत्न विवृत स्वीकार कर लेने पर ही 'शाम्यति,' इत्यादि प्रयोगों में दीर्घादि कार्यों की सिद्धि हो सकती है । इसी अभिप्राय को लेकर वार्तिक द्वारा शंका की गई है । "तस्य विवृतोपदेशादन्यत्रापि विवृतोपदेशः सवर्णग्रहणार्थः" इति । इस वार्तिक को अस्वीकृत करते हुए महाभाष्यकार ने प्रत्याहारस्थ विवृत अकार से धात्वादिस्य संवृत अकार के ग्रहण के लिये ज्ञापक का उपन्यास किया है "आचार्यप्रवृत्तिज्ञापयतिभवत्याक्षरसमाम्नायिकेन धात्वादिस्य ग्रहणमिति, यदयमकः सवर्णे दीर्घ इति प्रत्याहारे को ग्रहणं करोति" यदि प्रत्याहारस्थ विवृत अकार से अन्य संवृत अकार का ग्रहण नहीं होता तो 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र में 'अकः' का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा । 'अकः' के स्थान में इकः कहना चाहिये था । क्योंकि धात्वदिस्थ अकार विवृत न होने के कारण 'अक् नहीं माना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जा सकता है। इस तरह अकार के स्थान में दीर्घ प्राप्त नहीं हो सकता है, दीर्घ विधायक सूत्र में 'अकः' का प्रयोग व्यर्थ हो जायेगा। इस तरह पाणिनि द्वारा किया गया यही 'अकः' का प्रयोग अनुपपन्न होकर ज्ञापन कर रहा है कि "प्रत्याहारस्थ अकार से धात्वादिस्थ अकार का ग्रहण होता है" अर्थात् प्रयत्नभेद होने से असवर्ण भी धात्वादिस्थ अकार अत्व जाति से आक्रान्त होने के कारण विवृत अकार से गृहीत हो जाता है। प्रत्याहार में जातिपक्ष ही स्वीकार करना उचित है। यह सिद्धान्त ज्ञापित कर 'अकः' ग्रहण सार्थक हुआ है।

कैयट ने प्रदीप में भी यही अभिप्राय स्पष्ट किया है "तेन संवृतस्याग्रहणे 'इकः स्वर्ण इति वक्तव्यम्" इस कैयट के ग्रन्थ की व्याख्या करते हुए नागेश भट्ट ने उद्योत में और भी स्पष्ट कर दिया है, 'एवं च प्रयत्नभेदेनासवर्णस्यापि अत्वजात्याक्रान्तस्य विवृतेनाकारेण ग्रहणं ज्ञाप्यत इत्यर्थः' इस तरह यह वचन 'अकः' ग्रहण से ज्ञापित होकर 'शास्त्रशेष' वचन के रूप में स्थित हो सकता है क्योंकि शास्त्र का अङ्गभूत एक सिद्धान्त बना।

पहले भी यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञापक तभी समीचीन कहा जा सकता है जबकि वह ज्ञाप्यार्थ के बिना सर्वथा अनुपपन्न हो। किन्तु यहां अकः ग्रहण ज्ञाप्यार्थ के न होने पर भी जिसका ग्रहण प्रत्याहारस्थ अकार से हो सकता है, उस के लिये सार्थक ही है। जैसे खट्वा+आढ़कम्=खट्वाकम्, माला+आढकम्=मालाढकम् इत्यादि। कैयट ने स्थापित किया है "अकं इत्यकारेण विवृतेन दीर्घस्य विवृतस्य ग्रहणादज्ञापकमेतदित्यर्थः" अर्थात् विवृत अकार से विवृत दीर्घाकार का ग्रहण होने के कारण अक् ग्रहण सार्थक है, अतः यह ज्ञापक नहीं हो सकता है। अतः धात्वादिस्थ अकार का भी विवृतत्वोपदेश ही उचित है।

यह ज्ञापक सैद्धान्तिक नहीं है। केवल प्रासंगिक विचार का विषय है।

२—"नानुबन्ध संकरोऽस्ति"

'अइउण्' सूत्र के भाष्य में यह वचन ज्ञापक के रूप में उपन्यस्त है। यह वचन भी शास्त्र–शेष वचन ही कहा जायगा क्योंकि शास्त्र के एक सिद्धान्त के रूप में उपन्यस्त हुआ है।

अइउण् सूत्र में भाष्यकार ने व्यक्ति पक्ष को लेकर यह विचार आरम्भ किया है कि अक् आदि प्रत्याहारों में इत्संज्ञक ककारादि वर्णों को चिह्न विशेष के रूप में देख कर यह निश्चय किया जा सकता है कि यह अकार 'अइउण्' सूत्र का ही अकार है। अतः अक् आदि प्रत्याहारों में आने वाले अकार को अण्प्रत्याहारस्थ समझा जा सकता है। इस अकार से 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' सूत्र की सहायता से सवर्णों का बोध तो सम्भव होगा। किन्तु 'अस्य च्वौ' सूत्र में आए मुण्डित होकर रहना, वही गुप्तचर जिस स्थान, जिस काल में, जिस गुण से युक्त बताया गया है उस स्थान, उस काल में उसी गुण से युक्त होता है। उसी तरह शास्त्र में भी एक ही अकार जिस प्रकृति से यदनुबन्ध–युक्त बताया गया है उस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृति से तदनुबन्ध निमित्तक ही कार्य का सम्पादन करेगा। इस तरह यह वचन के रूप में ज्ञापित होने पर भी लोकन्याय से अन्यथा सिद्ध कर दिया गया है। अतः शास्त्र में इस वचन का उपयोग नहीं किया जाता है। लोकसिद्ध अर्थ के लिये वचन कल्पना उचित नहीं है।

३—न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति।

इस सूत्र के भाष्य में यह विचार किया गया है कि वर्णों में प्रतीयमान जो वर्णसदृश वर्णैकदेश, उसका वर्णग्रहण से ग्रहण होता है या नहीं। इस तरह का विकल्प प्रस्तुत कर वर्णैकदेश का वर्णग्रहण से ग्रहण होने में कुछ आपत्तियां दी गई हैं। उनमें एक आपत्ति यह है कि—दीर्घ में ह्रस्व सम्बन्धी विधि की प्राप्ति होगी। जैसे आलूय, प्रलूय इस प्रयोग में दीर्घ का एकदेश एकमात्रिक खण्ड को ह्रस्व ग्रहण से गृहीत कर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से तुक् का आगम होना चाहिये। इसी आपत्ति को दूर करने के लिये इस ज्ञापक वचन को उपन्यस्त किया गया है 'न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति' इति। इस वचन का ज्ञापन 'दीर्घात्' सूत्र द्वारा दीर्घ से परे छकार को तुगागम का विधान करने से हो रहा है अन्यथा दीर्घैकदेश को ह्रस्व मानकर ह्रस्व सम्बन्धी विधि 'छे च' सूत्र से ही तुक् का आगम हो जाता 'दीर्घात्' सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। इस तरह 'दीर्घात्' सूत्र द्वारा तुगागम के विधान से यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि 'न दीर्घे ह्रस्वाश्रयो विधिर्भवति' इति। इस तरह यह वचन वर्णैकदेश का वर्णग्रहण से ग्रहण होने के पक्ष में शास्त्रशेष रूप से उपयोग सम्भव है। किन्तु यह ज्ञापक-वचन एक पक्षीय होने से इसका शास्त्र में विशेष महत्व नहीं दिया गया है। कैयट ने तो इस ज्ञापक के ऊपर दृष्टिपात भी नहीं किया है।

इसी तरह इसी पक्ष को लेकर एक वचन को और उपन्यास किया है—'नाकारस्थस्याकारस्य लोपो भवति' इति। वर्णैकदेश का वर्णग्रहण से ग्रहण होने के पक्ष में एक आपत्ति यह भी उठाई है कि या धातु वा धातु से तृच् प्रत्यय द्वारा सिद्ध होने याता, वाला प्रयोग में 'अतो लोपः' सूत्र से दीर्घैकदेश एक मात्रिक अंश (अकार) का लोप होना चाहिये। यदि 'अतो लोपः' सूत्र में तपर करने के कारण आकारस्थ अकार का लोप नहीं होने की कल्पना कोई करना चाहे तो यह सम्भव नहीं होगा क्योंकि तपर-करण क प्रयोजन यह होगा कि समस्त आकार का लोप न किया जाय। परन्तु एकदेश अकार के लोप में तपरकरण बाधक नहीं हो सकता है। इस आपत्ति के समाधान में यह वचन उपन्यस्त है 'नाकारस्थस्याकारस्य लोपो भवति' इति इसका ज्ञापन मुख्य रूप से गापोष्टक् सूत्र में टक् प्रत्यय हो कित् किए जाने से हुआ है। सामगः, छन्दोगः, आदि प्रयोगों में सामादि शब्द के उपपद होने पर गै धातु से विहित टक् प्रत्यय के कित् होने की आवश्यकता 'आतोलोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप ही है, यदि आकारस्य अकार का भी लोभ होता तो टक् प्रत्यय को कित् करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। अतो लोपः से एकदेश अकार का लोप हो जाने मात्र से सामगः आदि प्रयोगों की सिद्धि हो जाती। परन्तु टक् को कित् कर सम्पूर्ण आकार के लोप का प्रयत्न आचार्य ने किया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'नाकारस्थस्याकारस्य लोपो भवति' इति। यह ज्ञापक भी शास्त्रशेष के रूप में एकपक्षीय होकर उपन्यस्त हुआ है। अतः इसका भी महत्व शास्त्र में नहीं के बराबर ही है। कैयट ने इस वचन पर भी दृष्टिपात नही किया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४—भवति ऋकारान्नोपात्वमिति ।

यह वचन वर्णैकदेश को वर्णग्रहण न करने के पक्ष में उपन्यस्त हुआ है। यदि वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत नहीं होगा तो मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों ऋवर्णों से परे नकार को णत्व करने के लिये स्वतन्त्र वचन करना पड़ेगा। वर्णैकदेश को वर्णग्रहण के गृहीत करने पर 'रषाभ्यां' नोणः समानपदेअट्कुत्वाङ्नु–भव्यवायेपि' से ही सिद्ध हो जायगा स्वतन्त्र वचन मानने की आवश्यकता नहीं होगी। इस आक्षेप पर वर्णैकदेश को वर्णग्रहण से ग्रहण न करने वाले पक्ष में भी स्वतन्त्र वचन की आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु 'क्षुम्नादिषु च' सूत्र द्वारा नृनमन् शब्द का क्षुम्नादिगण में पाठ कर णत्व का निषेध करने से ज्ञापित होता है कि ऋवर्ण से परे भी नकार को णत्व होता है। अन्यथा नृनमन शब्द में णत्व निषेध से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—'भवति ऋकारान्नोणत्वम्' इति। नृनमन शब्द अखण्ड संज्ञाभूत शब्द है। यदि समस्त खण्ड पद माना जाय तो समानपद में ही णत्व होने के कारण यहां णत्व की प्राप्ति ही सम्भव नहीं होगी। भाष्योक्त ज्ञापक असंगत हो जायगा। नागेश भट्ट ने नृनमनशब्दमिति भाष्य के प्रतीक को लेकर स्पष्ट लिखा है 'संज्ञाभूतमित्यभिप्रायः'। यह वचन शास्त्रशेष में होकर सम्पूर्णशास्त्र में उपयुक्त होता है।

५—नात्र रपरत्वं भवति इति ।

लण् सूत्र के भाष्य में अण् प्रत्याहार को लेकर विचार प्रवृत्त हुआ है कि लण् सूत्र में भी इत्संज्ञक णकार के होने से अण् तथा इण् प्रत्याहारों में संशय होगा कि ये प्रत्याहार पूर्वणकार (अइउण् के णकार) से निष्पन्न हैं या पर णकार लण् के णकार से निष्पन्न हैं। इसी प्रसंग में 'उरण् रपरः' सूत्र को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सन्देह किया गया कि इस सूत्र में अण् पूर्व णकार तक गृहीत है या परणकार तक ? इस सन्देह के समाधान में भाष्यकार ने कहा कि इस 'उरण् रपरः' सूत्र में कोई सन्देह सम्भव नहीं है। यहाँ अण् प्रत्याहार पूर्वणकार तक ही होगा, यह सर्वथा असंदिग्ध है क्योंकि ऋकार के स्थान में पर अण् अर्थात् अ, इ, उ, से अतिरिक्त की सम्भावना ही नहीं है।

इसी प्रसंग के सातत्य में मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों में आपत्ति उठाई गई है कि यहाँ ऋकार के स्थान में दीर्घ ऋकाररूप पर अण् सम्भव है। उसे भी उरण् रपरः से रपरत्व की प्रसक्ति होने लगेगी, अतः उरण् रपरः सूत्र के अण् प्रत्याहार में सन्देह बना ही है। इस आपत्ति के समाधान में भाष्यकार ने कहा है कि—'आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयतिनात्र रपरत्वं भवति' इति। यदयं ऋत इद्धातोरिति धातुग्रहणं करोति।' 'ऋत इद्धातोः' सूत्र में धातुग्रहण की आवश्यकता यही है कि मातृणाम्, पितृणाम् प्रयोगों में भी रपरत्व होगा तो धातुग्रहण सर्वथा अनर्थक हो जायगा। क्योंकि रपर होने पर अनन्त्य होने के कारण ऋकार के स्थान में इत्व प्राप्त ही नहीं होगा। यहाँ इत्व वारण करने के लिये धातुग्रहण सर्वथा व्यर्थ ही हो जायगा। अतः धातु ग्रहण से ज्ञापित 'नात्र रपरत्वं भवति' इस वचन से मातृणाम् आदि में कोई दोष नहीं होगा। अतः उरण् रपरः सूत्र में अण् प्रत्याहार के पर णकार तक होने का सन्देह निष्प्रयोजन ही है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस तरह धातुग्रहण से यह वचन प्रांसगिक रूप से ज्ञापित कर 'उरण् रपरः' में अण् प्रत्याहार के सन्देह को निष्प्रयोजन बता दिया गया है। वस्तुतः ऋत इद्धातोः सूत्र में धातुग्रहण आवश्यक ही है, वह ज्ञापक नहीं हो सकता है, क्योंकि यदि अनन्त्य होने के कारण ऋकार के स्थान में इत्व न किया जाय तो चिकीर्षति जिहीर्षति में भी इत्व नहीं प्राप्त होगा। अतः ये प्रयोग असिद्ध होने लगेंगे। यदि चिकीर्षति जिहीर्षति में कृ, हृ धातु को 'अज्झनगमां' सनि 'सूत्र से दीर्घ होने पर रपर हो जाने के बाद भी उपधायाश्च सूत्र द्वारा इत्व हो जायगा। इन प्रयोगों में दोष की सम्भावना नहीं होगी, ऐसा स्वीकार किया जाय तो मातृणाम् आदि प्रयोगों में भी दीर्घ होने पर रपर हो जाने के बाद भी उपधायाश्च से इत्व होने लगेगा। अतः धातुग्रहण ऋत इद्धातोः सूत्र में आवश्यक ही है, ज्ञापक नहीं हो सकता जैसा कि कैयट ने स्पष्ट किया है कि—तस्माद्धातुग्रहणस्य सप्रयोजनत्वान्नज्ञापकत्वमित्यर्थः। मातृणाम् आदि प्रयोगों में रपरत्व की प्राप्ति की सम्भावना से उरण् रपरः, सूत्र के अण् प्रत्याहार में सन्देह होगा ही। यहाँ सन्देह की निवृत्ति के लिये उपधान्तर का अन्वेषण करना ही होगा। 'नात्र रपरत्वं भवति' वचन केवल एकदेशीय विचार है।

६—अभेदका गुणाः

वृद्धिरादेच् सूत्र में आकार के तपर करण को लेकर विचार किया गया है। इस पर किसी ने तपरत्त्व का प्रयोजन सवर्णग्रहण को बताया। यदि आकार को तपर नहीं किया जायगा तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तीनों सवर्णो आकारों का ग्रहण नहीं होगा। क्योंकि गुण विवक्षित हुआ करते हैं। जो गुण उच्चरित होगा उसी गुण से युक्त आकार की वृद्धि संज्ञा होगी। अन्य गुण से युक्त आकारों की भी वृद्धि संज्ञा विधानार्थ तपर करण आवश्यक होगा। बिना तपर करण के 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र द्वारा समकाल सवर्ण का बोध नहीं हो सकेगा। अतः तपर करण आकार के लिये आवश्यक है। उदात्तादि गुणों का विवक्षित होना लोकतः सिद्ध है। लोक में देखा जाता है कि यदि कोई छात्र उदात्त के स्थान में प्रमादवश अनुदात्त का उच्चारण कर देता है तो उपाध्याय उसे थप्पड़ लगाता है। इस तरह गुण के भेद से वर्ण के भिन्न हो जाने के कारण तपर करण के समस्त आकार का ग्रहण नहीं होता। अतः तपर करण की आवश्यकता बताने पर दूसरे वादी ने गुणों के अविवक्षित होने का पक्ष प्रस्तुत किया। ननु च भी अभेदका अपि गुणा दृश्यन्ते। इति। जैसे मुण्डी, जटी, शिखी विभिन्न गुणों से युक्त होता हुआ भी देवदत्त अपनी संज्ञा का परित्याग नहीं करता है। उसी तरह एक आकार गुण के भेद होने पर भी आकार ही रहेगा।। इस पक्ष में आकार के तपर करण की कोई आवश्यकता नहीं है। इस तरह गुणों की विवक्षा का अविवक्षा दोनों पक्ष लोकसंगत होने से दोनों में कौन पक्ष न्याय संगत होगा, यह विचारणीय है। इस पर भाष्यकार ने कहा है—"अभेदका गुणा इत्येव न्याय्यम्" अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः सूत्र में आचार्य ने अनङ् आदेश को उदात्त बताया है। यदि गुण विवक्षित होते तो अनङ् आदेश को उदात्त गुण से युक्त उच्चारण कर देते, उच्चारण मात्र से उदात्त के विवक्षित होने का कारण अनङ् आदेश उदात्त ही रहता, उसके लिये उदात्त ग्रहण करना व्यर्थ है। यही उदात्त ग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करता है कि—"अभेदका गुणाः" इति। उदात्तादिगुण अविवक्षित होते हैं। इसलिये उदात्तग्रहण सार्थक सिद्ध हुआ। यदि उदात्त ग्रहण नहीं किया गया होता तो अनङ् के उदात्त गुण से युक्त उच्चारण करने पर भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसके अविवक्षित होने के कारण उदात्तत्व की सिद्धि नहीं हो पाती । इसलिये अनङादेश के उदात्तत्व के' लिये प्रयत्न विशेष के रूप में उदात्त ग्रहण करना सार्थक हुआ है । कैयट ने इसे इस तरह स्पष्ट किया है– तस्ताद्गुणरहितस्योच्चारणो भीन्नान्तरीयकत्वादुच्चार्यमाणोऽपि गुणः प्रयत्नमन्तेरण न विवक्षित इत्यर्थः । "अभेदकाः गुणाः यह वचन परिभाषेन्दुशेखर के शास्त्रशेष प्रकरण में भी नागेश भट्ट द्वारा व्याख्यात है । यह वचन परिभाषा रूप में व्याकरण–शास्त्र में प्रसिद्ध है । नागेश भट्ट ने इसका व्याख्यान—"असति यत्ने स्वरूपेणोच्चारितो गुणो न भेदको=न विवक्षित इत्यर्थः" इस तरह किया है । अर्थात् किसी विशेष यत्न के बिना स्वरूपतः उच्चरित गुण विवक्षित नहीं पोते हैं । अतएव जहां जो गुण विवक्षित होता है वहां उस गुण का 'अनुदात्तादेरन्तोदात्तात्' इत्यादि स्थल विशेष में उच्चारण किया गया है । यहाँ अनुदात्तादि पद का प्रयोग ही प्रयत्न विशेष किया गया हैं । इसी तरह उ मः ऊँ सूत्र में अनुनासिकोच्चारण रूपी यत्नाधिक्य देख कर अनुनासिकत्व की विवक्षा समझी जाती है । 'पथिमथ्यृमुक्षामात्' इत्यादि सूत्रों में स्थानी अनुनासिक नकार वर्ण के अनुरूप अनुनासिक आकार का उच्चारण न कर निरनुनासिक आकारादेश के उच्चारण रूपी यत्न के कारण अनुनासिकत्व की विवक्षा की गई है इसीलिये इस वचन के व्याख्यान में "असति यत्ने" इतना अंश और जोड़ा गया है ।

७—नाकारस्य गुणो भवति—

इको गुण वृद्धी सूत्र में इक् ग्रहण के प्रयोजन के विचार के प्रसंग में भाष्यकार ने कहा है कि आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति के लिये इक् का ग्रहण करना आवश्यक है । अन्यथा याता, वाता इन प्रयोगों में भी आकार के स्थान में गुण होने लगेगा । इसी तरह और भी कतिपय प्रयोजन बता कर आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति रूप प्रयोजन का निराकरण करते हुए कहा कि—आकारनिवृत्यर्थन । आचार्य प्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नाकारस्य गुणो भवति । इति । यदयं 'आतोऽनुपर्सगे क इति वकारमनुबन्ध करोति । निरासेऽपि व्यञ्जननिवृत्यर्थं सूत्रं कर्तव्यमेव' । इस तरह इकोगुणवृद्ध सूत्र में इक् की सार्थकता सिद्ध हो जाने पर आकार के स्थान में गुण की प्रसक्ति न होने के कारण यह ज्ञापन भी अनावश्यक हो जाता है । यदि इकोगुणवृत्ति के लिये मान्य होता । परन्तु इस सूत्र के रहने पर इस वचन का कोई महत्व नहीं रह जाता है । यह वचन पूर्वपक्ष के स्थापनार्थ केवल प्रासंगिक विचार का ही विषय है ।

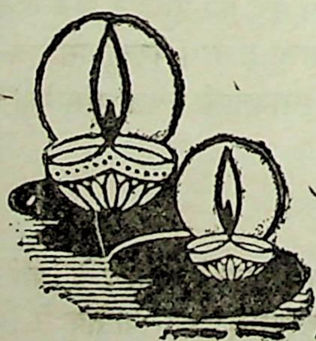
८—'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति'

यह वचन भी इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण के प्रयोजन के विचार में उपन्यस्त है । जैसा कि—'इग्ग्राहणमात्सन्ध्यक्षर व्यञ्जननिवृत्यर्थम्' इस वार्तिक से स्पष्ट किया गया है । इसी वार्तिक की व्याख्या में भाष्यकार ने कहा है 'व्यञ्जननिवृत्यर्थम्—उम्भिता, उम्भितुम्, उम्भितव्यम् । व्यञ्जनस्य गुणः प्राप्नोति । इग्ग्राहणान्न भवति । यदि इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् का ग्रहण न किया जाय तो उम्भिता इत्यादि प्रयोगों में सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र द्वारा उम्भ धातु के भकार के स्थान में भी ओष्ठ्यवर्ण होने के कारण ओकार गुण होने लग जायेगा, अतः व्यन्जन वर्ण के स्थान में कुण की विवृत्ति के लिये इग्राहण आवश्यक है । इस प्रयोजन के खण्डन के लिये भाष्यकार में ज्ञापक उपन्यस्त कर कहा कि—व्यञ्जनि-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्यर्थेनापि नार्थः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति न व्यञ्जनस्य गुणो भवति, इति । यदयं जनेर्ड शास्ति । 'सतम्यां जनेर्डः सूत्र में उ-प्रत्यय के डित्करण का प्रयोजन यही है कि उपसरजः, मन्दुरजः इत्यादि प्रयोगों में जन धातु से ड प्रत्यय करने पर डित्वसामर्थ्यात् टिलोप हो सके, यदि व्यञ्जन के स्थान में भी गुण होगा तो ड-प्रत्यय का डित्करण व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि ड प्रत्यय करने के बाद 'सार्वधातुकार्ध धातुकयोः' सूत्र से जन धातु में नकार के स्थान में अकार गुण होकर तीनों अकारों के पर रूप हो जाने से उपसरजः मन्दुरजः आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जायेंगे, ड-प्रत्यय का डित्करण व्यर्थ हो जायगा । इससे यह निश्चित हो रहा है कि आचार्य ने यह देखा है कि—'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति,' इसीलिये जन् धातु से ड प्रत्यय 'आतो नुपसर्गे कः, सूत्र में क प्रत्यय का कित्करण व्यर्थ हो जायगा । इससे स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि आचार्य पाणिनि को यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि 'आकार के स्थान में गुण नहीं होता है ।' यहां गुण करने पर पररूप की अपेक्षा 'अतो लोपः' सूत्र से पर होने के कारण लोप की प्रसक्ति की आशंका नहीं की जा सकती है क्योंकि 'अतो लोपः' सूत्र से आर्धधातुकोपदेश काल में जो अकारान्त हो, उसके ही अकार के लोप का विधान होता है । कैयट ने यह स्पष्ट किया है कि 'अतो लोपस्तु न भवत्यार्धधातुकोपदेशे यदकारान्तं तस्य लोपविधानात्' यद्यपि आगे चलकर भाष्य में 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र में कित्करण का प्रयोजन उत्तर सूत्र 'तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः' में बताकर इसके ज्ञापकत्व का खण्डन कर दिया है ।

(क्रमशः)



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर्यावरण प्रदूषण के निदान में अग्निहोत्र का स्थान-

—बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

"अन्तरिक्ष के विनाशक तत्वों का विनाश यज्ञ से करो ।[1]अथर्व–१-७-६ ॥

"असुरों का अग्नि ही नाश करती है । इस प्रकार विश्व की यज्ञ द्वारा चिकित्सा होती है ? [2]यजु० २-३०

आज के शहरी वातावरण में औद्योगिक प्रतिष्ठानों के व्यापक समूह से पर्यावरण दूषित हो रहा है। कारखानों की चिमिनियों से फैलता सलफर, कार्बन डाय आक्साइड एवं विषाक्त धुंआ वायु को दूषित करते रहते हैं । परिवहन वाहनों से उठता हुआ प्रदूषण, जल-कल-ग्रान के विभिन्न संयत्रों से बना यांत्रिक जीवन प्रदूषण के साये में पल रहा है । फलस्वरूप मानवीय जीवन में इस प्रकार कृतिमता के प्रवेश से अनेक बीमारियां चतुष्मुख रूप से व्याप्त है । दूषित वातावरण, संतप्त कोलाहल एवं मानसिक अशान्ति से पीड़ित आज का मानव अनेक प्रकार की समस्याओं से आक्रान्त हो अपने को बैचेन महसूस कर रहा है ।

तकनीकि ज्ञान के आधुनिक विस्तार से, बेतहासा मशीनीकरण के इस युग में प्राकृतिक सम्पदा के दोहन की होड मची हुई है । समस्त यांत्रिक जीवन प्रकृति में दुःखद असंतुलन पैदा कर रहा है । फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व के समक्ष वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, आणविक विस्फोट और सर्वाधिक दुःखद पहलू जो इन प्रदूषणों के परिणाम से ही फलीभूत हो रहा है अर्थात् मानसिक प्रदूषण मुंह बाये खड़े हैं । मानसिक तनावों से जूझता आज का मानव समुदाय सबसे अधिक अशान्त है । प्रदूषणों की इन भयंकर-ताओं के कारण प्रकृति की शक्तियों में असन्तुलन बढ़ता जा रहा हे । मानव, जलचर, थलचर और वृक्षवनस्पति सब का अस्तित्व खतरे में है ।

वायु के उच्चतम स्तर ओजान का कार्य सूर्य की किरणों में से दाहक किरणों को वक्रीभूत करके उन्हें सौम्य रूप में पृथ्वी पर भेजना है । प्रदूषण के कारण ओजान का यह स्तर नष्ट होने लगता है । अतः दाहक सूर्य किरण सीधी ही पृथ्वी पर आने लगती है, जिसके कारण अनेक व्याधियों का प्रकोप बढ़ने की गरज से आजकल रासायनिक खादों और दवाओं का बेतहाशा एवं असन्तुलित तरीके से उपयोग किया

---

१ दूतो नो अग्ने भूत्वा, यातुधानान् विलापय । अथर्व १-७-६ ।
२ ये स रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुरा सन्तः स्वधया चरन्ति । यजु० २-३० ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जा रहा है। इन कृत्रिम दवाओं और खादों के कारण जमीन में विषैलापन बढ़ने की संभावनाएं उत्पन्न हो रही है। अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी धरती पुत्र किसानों में बढ़ते जा रहे है। आणविक शक्ति परीक्षणों से भूगर्भ तथा जलाशयों में गर्मी पैदा होकर अणु उत्सर्जित विकिरण एवं रेडियो सक्रियता धूल से फैलता विषैलापन सारे वातावरण को जहरीला बना देता है जिससे प्राकृतिक शक्तियों में विशेष प्रकार का ध्वंश पैदा हो रहा है। जोधपुर विश्वविद्यालय के प्राणीशास्त्र विभाग द्वारा सितम्बर ८० में आयोजित सेमिनार में हमारे पर्यावरण का मूल्यांकन विषय पर बोलते हुए प्रो० एम० एल० माथुर ने बनों की कटाई तथा पेडों की बढ़ती कमी पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की। इस सेमीनार से सम्मिलित वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी कि गांवों में उर्जा के स्रोत के रूप में अन्य कोई विकल्प नहीं मिला तो दस साल बाद इँधन की लकड़ी का जो संकट आयेगा वह वर्तमान तेल संकट से भी ज्यादा भयंकर होगा। प्राकृतिक वन सम्पदा को नुकसान पहुँचाना मानवता के लिये एक गम्भीर खतरा है।

चिपको आन्दोलन के जनक सुन्दरलाल बहुगुणा का कथन एक कटु सत्य है कि पेड़ों की कटाई से पिछले दस वर्षों में भूस्खलन की घटनाओं में जहाँ अत्यधिक वृद्धि हुई है वहाँ पर्यावरण के कारण पर्वतीय इलाकों में बाढ़ों की विनाशलीला भयंकर रूप धारण करती जा रही है आज मानवीय जीवन की समस्याओं के समाधान में प्राकृतिक वन संरक्षण को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अतः धर्म विज्ञान और प्रकृति में सन्तुलन होना आवश्यक है। प्रदूषण की मूल समस्याएं उत्पन्न ही वहीं से होती है जब हम अपनी आवश्यकताओं के लिये सृष्टि की प्राकृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं। वातावरण को विशुद्ध करने हेतु वृक्षारोपण का कार्यक्रम व्यापक स्तर पर मनुष्य को उपदेश दिया गया है जिसमें उसे प्रदूषणों की रोकथाम के लिये सूर्य की आराधना करने को कहा है "सूर्य की किरणों से अपने धन को तथा अपने को शुद्ध करो।" [1]आरोग्यदाता को सूर्य प्रकाश हमारे घरों में अधिकाधिक पड़ना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने २०वीं शताब्दी में उत्पन्न हुई इन समस्याओं का मानों आज से सौ वर्ष पहले ही दर्शन कर लिया था। तभी उन्होंने आर्यजन के सन्मुख प्रदूषण निवारण हेतु एक ऐसा अद्‌भुत साधन प्रस्तुत किया जिस पर यदि आज के वैज्ञानिक गम्भीरता से गौर करें तो शायद प्रदूषण की समस्या के निदान से मानव जाति के हाथ एक महत्वपूर्ण नुसखा उपलब्ध हो जाय। वह साधन है दैनिक अग्नि होत्र का। अपने ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द लिखते हैं—

अग्नि-होत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त जो कर्मकाण्ड है, उसमें चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है-एक सुगन्ध गुण युक्त, जो कस्तूरी केशरादि है, दूसरा मिष्ट गुण युक्त जो कि गुड और शहद आदि कहाते हैं, तीसरा पुष्टिकार गुण युक्त, जो घृत, दुग्ध और अन्न आदि है, और चौथा रोगनाशक गुण युक्त जो कि सोमलतादि औषधि आदि है। इन चारों का परस्पर शोधन संस्कर और यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्तिपूर्वक जो होम किया जाता है, वह वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करने वाला होता है। इससे सब जगत को सुख होता है।

---

१ "स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो सृजन्" अथर्व १-१२-१।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि दयानन्द ने वातावरण की विषाक्त स्थिति को अत्यधिक गम्भीरता से लिया तथा उन्होंने मनुष्यों को उपदेश दिया "हे मनुष्यों तुम लोग वायु, औषधि और वर्षाजल की शुद्धि से, सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम्र व ढाक आदि काष्ठों से अतिथि रूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो।" 1ऋषि दयानन्द का कहना था कि मनुष्य संसार में मल विसर्जन, श्वास प्रश्वास आदि के द्वारा जो प्रदूषण फैलता है उसकी निवृत्ति हेतु अग्निहोत्र आदि कर्मों में उसे अवश्य संलग्न होना चाहिये जिससे वातावरण की शुद्धता में वह अपना योगदान दे सके।

यजुर्वेद में एक स्थल पर आया है "अद्रिरसि वनस्पतयः" वनस्पति से अर्थात् मेघ बनते हैं। वनस्पति, घृत आदि की यज्ञ में जब आहुति दी जाती है तो सूक्ष्म एवं शक्तिशाली होकर वायु प्रसारित होती है।

सायंकालीन यज्ञ आहुतियों की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द मानव समाज को आह्वान करते हैं "अग्नि जो ज्योतिस्वरूप परमेश्वर है, उसकी आज्ञा से हम लोग परोपकार के लिये होम करते हैं और उसका रचा हुआ यह भौतिक अग्नि इसलिये है कि वह उन द्रव्यों को परमाणु रूप करके वायु और वर्षाजल के साथ मिला के शुद्ध कर दे। जिससे सब संसार को सुख और आरोग्यता की वृद्धि हो।" 2जलवायु की शुद्धिकरण प्रक्रिया अग्निहोत्र की व्यवस्था से सम्भव है। यजुर्वेद में एक स्थल पर आया है।" जो अग्नि परमेश्वर सूर्यादि लोको में व्याप्त वायु और रात्रि के साथ संसार का परमहितकारक है, वह हमको विदित होकर हमारे किये गये पर्यावरण दोष को दूर करे।"3

प्राकृतिक सन्तुलन—

इसी प्रकार अथर्ववेद में एक स्थल पर आता है "विश्व के रचयिता ने यज्ञ के द्वारा प्रकृति का सन्तुलन किया।" 1अग्नि में यह सामर्थ्य है कि वह अनेक प्रकार के विषाक्तताओं को समेट करके उसे शुद्ध विशुद्ध कर देती है। अतः हवन से शारीरिक रोगों की निवृत्ति तथा प्रदूषण की रोकथाम की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में ही कथन है "अज्ञात रोग और ज्ञात रोग, राजयक्ष्मा रोग, वातावरण की विषाक्तता, आदि दोषों को इन्द्र और अग्नि की आहुतियों से दूर किया जाता।" 2इसी प्रसंग में अनेक मन्त्रों में यह सिद्ध किया गया है कि प्रकृति की शक्तियों में परस्पर सन्तुलन एवं तालमेल करने में अग्निहोत्र की आश्चर्यजनक भूमिका है" हवन में प्रदूषण को रोकने की हजारों शक्तियां है। इससे मनुष्य का जीवन सौ वर्ष से अधिक हो सकेगा।" 3यज्ञ में प्रयुक्त किये घृत, दूध, मधु, अन्नादि के सूक्ष्म अंश वृष्टि जल के साथ परिस्रुत होकर इस पृथ्वी पर वायु जल एवं अन्न के माध्यम से प्राप्त होते

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका
२ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका। वैदिक यन्त्रालय।
३ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्रेन्द्रवत्या, जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। यजु० ३-६-१०।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं तो वे बल एवं पराक्रम के वहन करने वाले हो जाते है ।"[4]

वर्षा विज्ञान—

स्पष्ट है कि यज्ञ प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम प्रभाव वायु के तापमान पर पड़ता है । वायु गरम होकर ऊपर जाती है तथा चारों ओर से वायु का प्रवाह इस प्रकार खाली हुए स्थान की ओर होने लगता है । आहुतियों के कारण कभी तो गर्मी अधिक होती है, कभी कुछ कम । यज्ञ से प्रयुक्त आहुति द्रव्यों की वाष्पमय धूम्र एवं सूक्ष्म अंश युक्त परमाणुओं को ऊपर फेंकती रहती है । गैस युक्त कण जब मेघों में प्रसारित होता है तो उन पर मेघों की वाष्प जम कर वर्षा देती है । शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण के आधार पर स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सिद्ध किया है "जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते है, उनमें धुंआ और भांप उत्पन्न होते है, क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि (वह वृक्ष, औषधि, वनस्पति तथा जलादि) पदार्थों में प्रवेश करके उनकों भिन्न-भिन्न कर देता है । फिर वे हलके होके वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं । उनमें जितना जल का अंश है वह भांप कहाता है, और जो शुष्क है वह पृथिवी का भाग है, फिर वे परस्पर मिल के बादल होके उनसे वृष्टि से (यज्ञ आदि) औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर और शरीर से कर्म बनता है ।"

ऋषि दयानन्द ने पूर्वमीमांसा धर्मशास्त्र का सन्दर्भ देते हुए लिखा है "सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि में होम करने से जगत का अत्यन्त उपकार होता है । जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध द्रव्य और घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा के उनमें छोंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ाने वाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भांप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत को सुखी करता है, इससे वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है ।"

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण का हवाला देते हुए स्वामी जी आगे लिखते है" मनुष्यों का समूह है, उसी के सुख के लिये यह होता है, और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत का उपकार करेगा, उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा । इसलिये यज्ञ का अर्थवाद यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत में आनन्द को बढ़ाता है । परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम के करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य ज्ञात होनी चाहिये । सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सब को उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञ कर्ता को, अन्यथा नहीं ।

---

१ इमं य विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः अथर्व० २-३३-५ ।

२ मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्माद्रुत राजयक्ष्मात् अथर्व ३-११-१ ।

३ शतं त इन्द्रों अग्निः सविता वृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् अथर्व ३-११-४ ।

४ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत में पितॄन ।। यजु० २-३४ ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तैत्तिरीय उपनिषद में प्रदूषणों की रोकथाम में अग्निहोत्र का महत्व दिग्दर्शित किया गया है जिसे ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी आदि तत्व उत्पन्न हुए है और उनमें ही पूर्वोक्त क्रम के अनुसार शरीर आदि उत्पत्ति, जीवन और प्रलय को प्राप्त होते हैं, यहाँ अन्न का नाम ब्रह्म है, क्योंकि जिसका जो कर्म है वह उसी में मिलता है। वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से जगत की तीनों अवस्था होती है, और सब जीवों के जीवन का मुख्य साधन है, इससे अन्न को ब्रह्म कहते हैं। जब होम से वायु, जल और औषधि आदि शुद्ध होते हैं, तब सब जगत को सुख, और अशुद्ध होने से सबको दुःख होता है। इससे इनकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये।

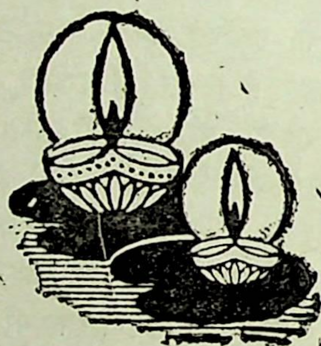
सृष्टि में फैले व्यापक प्रदूषण को ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से उसे दूर करने के उपाय पर चिन्तन किया। उन्होंने इसी ग्रन्थ में इस दृष्टिकोण को जनमानस को समझाते हुए लिखा वायु मण्डल की "शुद्धि करने में दो प्रकार का प्रयत्न है–एक तो ईश्वर का किया हुआ, और दूसरा जीव का। उनमें से ईश्वर का किया यह है कि उसने अग्नि रूप सूर्य और सुगन्धमय पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है। वह सूर्य निरन्तर सब जगत के रसों को पूर्वोक्त प्रकार से ऊपर खेंचता है और जो पुष्पादि का सुगन्ध है वह भी दुर्गन्ध को निवारण करता रहता है। परन्तु वे परमाणु सुगन्ध और दुर्गंधयुक्त होने से जल और वायु को भी मध्यम गुण वाले कर देते हैं। उस जल की वृष्टि से औषधि, अन्न, वीर्य और शरीरादि भी मध्यम गुण वाले हो जाते है और उनके योग से बुद्धि, बल, पराक्रम, धैर्य और शूरवीरादि गुण भी मध्यम ही होते है, क्योंकि जैसा कारण होता है, उसका वैसा ही कार्य होता है? यह दुर्गन्ध से वायु और वृष्टि जल का दोषयुक्त होना सर्वत्र देखने में आता है। सो यह दोष ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यों ही की सृष्टि से होता है। इस कारण से उसका निवारण करना भी मनुष्यों ही को उचित है।"

क्योंकि सबके उपकार करने वाले यज्ञ को नहीं करने से मनुष्यों को दोष लगता है। जहाँ जितने मनुष्य आदि के समुदाय अधिक होते हैं, वहाँ उतना ही दुर्गंन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यादि प्राणियों से निमित्त से ही उत्पन्न होता है। क्योंकि हस्ती, घोड़ा-गाय आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गंध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।"

स्वामी दयानन्द ने एक स्थल पर कहा है—"जितने प्राणी देहधारी जगत में हैं, उनमें से मनुष्य ही उत्तम है। इससे वे ही उपकार और अनुपकार को जानने के योग्य है। मनन नाम विचार का है, जिसके होने से ही मनुष्य नाम होता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में परमाणु आदि के संयोग विशेष (से विज्ञानोत्पति के अनुकूल अवयव) इस प्रकार रचे हैं कि जिनसे उनको ज्ञान की उत्पति होती है। इसी कारण से धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को भी वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं। इससे सबके उपकार के लिये यज्ञ का अनुष्ठान भी उन्हीं को करना उचित है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी दयानन्द के इन व्याख्यानों के सन्दर्भ में आर्य समाजों और आर्य व्यक्तियों ने यज्ञ की महिमा को पहचाना और यथासम्भव अपने त्योहारों, सम्मेलनों और गृहों में विधिवत् होम यज्ञ करने की परिपाटी डाली। लेकिन ऐसा लगता है कि यह यज्ञ धार्मिक कर्मकाण्ड के भंवर में फंस गये और वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ। कदाचित् उसका कारण यह रहा होगा कि अब तक प्रदूषण की समस्या की गम्भीरता से वैज्ञानिक प्रायः अनभिज्ञ हो थे। यह समस्या तो अब पिछले १० वर्षों से ही दृष्टिगत हुई है। और अब जब कि आधुनिक वैज्ञानिक पूरे वेग से इस समस्या के निदान की खोज में तत्पर हैं दयानन्द का फार्मूला उन के समक्ष विश्लेषण और अनुसंधान हेतु उपस्थित है।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गतांक से आगे—

राम साहित्य की व्यापकता—

—डॉ० राकेश शास्त्री

२–अध्यात्म रामायण—

रामकथा की दृष्टि से अध्यात्म–रामायण बहुत गौण है परन्तु रामभक्ति के विकास में इसका स्थान निश्चित ही महत्वपूर्ण है। वेदान्त दर्शन के अनुसार रामभक्ति का महत्व प्रतिपादित करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस अध्यात्म रामायण का परवर्ती रामायणों एवं रामकथाओं पर बहुत गहरा प्रभाव हुआ है।

३–अद्भुत रामायण—

रामकथा की परम्परा में अद्भुत् रामायण के अनेक प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

४–आनन्द रामायण—

बारह हजार दो सौ बावन श्लोकों का यह वृहदाकार ग्रन्थ अनेक विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है।

५–तत्त्व संग्रह रामायण—

तत्त्व संग्रह रामायण का प्रमुख उद्देश्य राम के परब्रह्मत्त्व का प्रतिपादन करना है। इसकी भूमिका में राम को विष्णु, शिव, ब्रह्मा, हरिहर, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म का अवतार माना गया है। इस रचना का प्रमुख आधार ग्रन्थ धर्मखण्ड है। तत्त्व संग्रह रामायण का कोई प्रसंग मौलिक तथा विशेष रूप से रामकथा के सन्दर्भ में उल्लेखनीय नहीं है। रामभक्ति की दृष्टि से इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें राम की दास्य भक्ति के साथ-साथ अद्वैत रामभक्ति का भी उल्लेख किया गया है।

६–काल निर्णय रामायण—

कुछ रामायण ऐसे उपलब्ध हैं जिनमें रामकथा की प्रमुख घटनाओं की तिथियाँ दी गयी है। इस का सम्भवतः सबसे अधिक पुरातन रूप स्कन्द महापुराण तथा पद्मपुराण के अन्तर्गत उपलब्ध होता है।

७–मन्त्र रामायण—

इस रचना का मुख्य उद्देश्य है रामायण के वेद मूलत्त्व का प्रतिपादन करना। रामायण के वेद

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मूलत्त्व को एक प्रसिद्ध श्लोक द्वारा व्यक्त किया जाता है, जिसका आशय है, राम के प्रकट होने के साथ-साथ वेद भी रामायण के रूप में प्रकट हुए--

वेद वेद्य परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतमासादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।।

८–वेदान्त रामायण—

इस रामायण में राम के प्रश्न करने पर उत्तर में बाल्मीकि ने परशुराम के जन्म तथा चरित्र का वृत्तान्त वेदान्त रामायण के रूप में कहा है।

९–अन्य रामायण—

हिन्दुत्व नामक ग्रन्थ में पं० धनराज शास्त्री की टिप्पणियों के आधार पर श्री रामदास गौड ने उन्नीस रामायणों का परिचय दिया है। वे इस प्रकार है—

१—महारामायण
२– संवृत्त रामायण
३—लोमश रामायण
४—अगस्त्य रामायण
५--मंजुल रामायण
६—सौपद्य रामायण
७—रामायण महामाला
८—सौहार्द रामायण
९—रामायण मणिरत्न
१०—सौर्यूर्य रामायण
११—चान्द्र रामायण
१२—मैन्द रामायण
१३—स्वायंभुव रामायण
१४—सुब्रह्म रामायण
१५—सुर्क्चस रामायण
१६—देव रामायण
१७श्रवण रामायण
१८--दुरत रामायण
१९—रामायण चम्पू ।

तथा अन्य संस्कृत धार्मिक साहित्य में रामकथा—

रामकथा से सम्बद्ध कुछ अन्य संस्कृत धार्मिक रचनाएं निम्न हैं—

१ जैमिनि भारत–

रामकथा की इस रचना के अंशरूप अथवा आधारित अनेक रचनाएं समझी जाती हैं। ऐसी ही तीन रचनाओं का नाम उल्लेखनीय हैं—

अ—जैमिनीय अश्वमेघ
आ—मैरावण चरित अथवा हनुमद्विजटा
इ—सहस्रमुखरावण चरितम्

(क्रमशः)

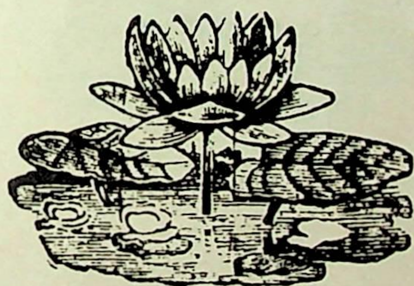
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय समाचार—

५ नवम्बर १६८२ को १५ हनुमान रोड, आर्यसमाज, नई दिल्ली में आयोजित किये गये कवि सम्मेलन की अध्यक्षता आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार ने की।

१०-११ नवम्बर, १६८२ को विद्वान् डॉ० रूप नागपाल ने "अस्तित्ववाद और आधुनिक चिन्तन" विषय पर वेद एवं कला महाविद्यालय में एक व्याख्यान दिया। उनका मत था कि अस्तित्त्ववाद बीसवीं शताब्दी में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकसित हुआ एक नवीन दर्शन है तथा इसके प्रवर्तक स्व० विद्वान् जीन पाल सार्वे हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि यदि दर्शन की इस शाखा के इस इतिहास को खोजा जाए, तो यह ज्ञात होगा कि इसका विकास छठी शताब्दी ई० पू० में हो चुका था। इस सभा का संयोजन अंग्रेजी विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष श्री सदाशिव भगत ने किया।

नवम्बर माह में विश्वविद्यालय के कुलसचिव, डॉ० जबरसिंह सैंगर ने स्थानीय एस० एम० जे०-एन० महाविद्यालय के इतिहास विभाग की परिषद् का उद्घाटन किया।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल फोन : ७७

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका



मार्गशीर्ष–२०३९ वर्ष–३४ अंक ९

दिसम्बर–१९८२ पूर्णांक–३३९

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

ओ३म्

गुरुकुल–पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डॉ० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डॉ० जबरसिंह सैंगर (कुलसचिव)

विषय–सूची



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक–पत्रिका]

मार्गशीष २०३६ | वर्ष ३४ | अङ्क–६
दिसम्बर १६८२ | | पूर्णाङ्क–३३६

श्रुति सुधा

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।। साम० १६७ ॥

अन्वय :—**सिन्धवः समुद्रम् इव इन्दवः त्वा आविशन्तु । इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते ।**

सं० अन्वयार्थं :—नदियाँ समुद्र में जैसे [प्रविष्ट हो जाती हैं] वैसे ही ये ज्ञानी पुरुष वा इन के भक्तिरूपी सोमरस तुझ में प्रविष्ट हों । तुझ से कोई बढ़कर नहीं ।

अन्वयार्थं :—(सिन्धवः समुद्रम् इव) सरिताएं जैसे दौड़ती हुई सागर में समा जाती हैं, वैसे ही (इन्दवः त्वा आविशन्तु) हे प्रभुवर ! ये ज्ञानी जन तुझ में प्रविष्ट हों । (इन्द्र ! त्वा न अतिरिच्यते) हे प्यारे परमेश्वर ! ज्ञान धन बल बुद्धि आदि में तुझ से बढ़कर कोई नहीं है ।

ये सरिताएं जैसे दौड़ती-भागती हुई समुद्र में घुस कर अपना नाम रूप खोकर तद्रूप हो जाती है, ठीक वैसे ही जिन्होंने भक्तिरूपी सोमरस से अपने हृदयों को आप्लावित कर लिया, ऐसे भक्तजनों को चाहिये कि वे तप स्वाध्याय और ध्यान भजन आदि के द्वारा बड़े उत्साह से–बड़ी उमंग से–बड़े ही वेग से निरन्तर आगे बढ़ते हुए उस प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करते हुए उस में ऐसे प्रविष्ट हो जाएं–उस में ऐसे खो जाएं कि फिर उन को अपना नाम-रूप भी स्मरण न रहे । तात्पर्य यह है कि वे ब्रह्म को पाकर ब्रह्म-रूप ही हो जाएं । अर्थात् फिर वे वही करें जो ब्रह्म करता है । जैसे ब्रह्म राग–द्वेष, स्वार्थ आदि से ऊपर उठकर सब का हित करता है वैसे ही वे भी किया करें । सचमुच उस इन्द्र से–उस परब्रह्म परमेश्वर से कोई और बढ़कर जानने और पाने योग्य नहीं है । उस का जानना और पा लेना मानो सब कुछ जान लेना और सब कुछ पा लेना है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुषों के वचन—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।। मनु० ४-१०-९ ।।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म के ही अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से ले के परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होता है। (सत्यार्थ प्रकाश)

सन्ध्योपासन जप–ध्यान–

सन्ध्योपासना एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करें।

जङ्गल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उस के अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासना भी क्रिया करे।

अग्नि होत्र—सर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है।
(सत्यार्थ प्रकाश)

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट् पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्याद विहिंसया ।। वि० नी० २.१७ ।।

जैसे भ्रमर पुष्पों को बचाता [हानि न पहुँचाता] हुआ मधु ले लेता है, ऐसे ही क्लेश दिये बिना राजा मनुष्यों से धन लेवे।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ।। वि० नी० २-२२ ।।

जिस की कृपा निष्फल हो तथा जिस का क्रोध निरर्थक हो, प्रजाएं उस राजा को नहीं चाहती, जिस प्रकार स्त्रियां नपुसंक पति को नहीं चाहती।

कौन शान्ति को प्राप्त करता है—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। गीता २-७१ ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जो मनुष्य इन सब कामनाओं को छोड़ कर स्पृहारहित, ममता रहित, तथा अहंकार रहित होकर विचारता है, वही शान्ति पाता है।

किस की प्रज्ञा प्रतिष्ठित रहती है—

तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। गीता २-६८ ।।

हे महाबाहो ! इसीलिये जिसकी इन्द्रियां, इन्द्रियों के अभिलषित विषयों से हटाकर अपने वश में कर ली गई हैं, उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

सर्वेवदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीभ्योमित्येतत् ।। कठोपनिषद् ।।

जिस शब्द का सब वेद बार-बार वर्णन करते हैं, सब तप जिस को पुकारते हैं, जिस की चाहना में ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, संक्षेप में वह शब्द हे नचिकेता तुझे बतलाता हूँ—वह शब्द 'ओ३म्' यह है।

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयाक्षरं परम।
एतद्धयाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्म तत् ।। कठोपनिषद् ।।

"यही अक्षर–अविनाशी 'ओ३म् ही ब्रह्म है, यही सब से परम है, इसी अविनाशी अक्षर को जानकर जो कोई जो कुछ चाहता है उसे वह प्राप्त हो जाता है।"

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।। कठोपनिषद् ।।

यह सर्वश्रेष्ठ सहारा है, यही परम सहारा है। इस सहारे को जानकर ब्रह्मलोक में मनुष्य महिमा को पा लेता है।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष चरितम्—

महात्मा गांधी—

हाईस्कूल के पहले ही साल की, परीक्षा काल की एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर जाइल्स स्कूल के मुआइने के लिये आए थे। उन्होंने पहले दर्जे के लड़कों को पांच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द 'केटल' (Kettle) था। उसके हिज्जे मैंने गलत लिखे। मास्टर ने मुझे अपने बूट की नोक से चेताया, पर मैं क्यों चेतने लगा! मैं यह सोच भी न सका कि मास्टर मुझे सामने के लड़के की सलेट देखकर हिज्जे दुरुस्त कर लेने का इशारा कर रहे हैं। मैं ने तो यह मान रखा था कि मास्टर वहाँ इसलिये तैनात है कि हम एक दूसरे की नकल न कर सकें। सब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले, अकेला मैं बेवकूफ बना। मेरी 'मूर्खता' मास्टर ने मुझे बाद में बतलाई, पर मेरे मन पर उसका कोई असर न हुआ। मुझे दूसरे लड़कों की नकल करना कभी न आया।

इतने पर भी मास्टर के प्रति मेरा आदर कभी घटा नहीं। बड़ों के दोष न देखने का गुण मुझ में स्वाभाविक था। इन मास्टर के अन्य दोष भी मुझे बाद को मालूम हुए, फिर भी उनके प्रति मेरा आदर ज्यों का त्यों बना रहा। (आत्मकथा; महात्मा गांधी से गृहीत)

श्याम जी कृष्ण वर्मा—

श्याम जी कृष्ण वर्मा भले ही अपनी आँखों के सामने देश को स्वतन्त्र न देख सके, परन्तु हमें जो आजादी मिली है, उसमें श्याम जी कृष्ण वर्मा का बहुत बड़ा हाथ था। उन्हें क्रान्तिकारियों के अग्रदूत कहें तो अनुचित न होगा। इग्लैंण्ड स्थित 'इण्डिया हाऊस' श्याम जी कृष्ण वर्मा का महान् कीर्ति स्मारक है। अब इस की व्यवस्था भारत सरकार कर रही है। भारतीयों के लिये यह पवित्र स्मारक 'तीर्थ स्थान' बन गया है।

लगातार ३० वर्ष तक विदेशों में रहकर हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने का जो कार्य श्याम जी कृष्ण वर्मा ने किया है—वह भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। उन का तप और त्याग भावी सन्तति के लिये प्रेरणा का स्रोत है। और उन का जीवन अत्यन्त पुरुषार्थ और कर्तव्य परायणता की साक्षात् मूर्ति थी।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय—

मैं नहीं भूल सकूंगा उस प्यार को जो पहली बार १८८२ में लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर जाने पर मेरे साथ स्वर्गीय लाला साईंदास जी ने किया। मुझे पकड़ लिया और अलग लेजाकर कहने लगे कि हमने बहुत समय प्रतीक्षा की है। अब तुम हमारे साथ मिल जाओ। वे मेरे साथ बातें कर रहे थे और मेरे मुंह की ओर देखते और पीठ पर प्यार का हाथ फेरते जा रहे थे। मैं ने "हाँ" किया, उन्होंने प्रवेश फार्म मंगा लिया, मैंने कुछ सोचा। वह हँसने लगे और कहा कि तुम्हारे हस्ताक्षर लिये बिना तुम्हें नहीं जाने दूंगा। मैंने हस्ताक्षर कर दिये। उस समय उन के मुख पर जो झलक प्रसन्नता की दिखाई दी उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। ऐसा प्रतीत होता था कि उनको हिन्दुस्तान की बादशाहत मिल गई हो।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गतांक से आगे—

राम साहित्य की व्यापकता—

डॉ० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

२—सत्योपाख्यान—

इसमें बाल्मीकि तथा मार्कण्डेय दोनों का संवाद है। इसकी रचना अध्यात्म रामायण के बहुत बाद हुई है।

३—धर्मखण्ड—

यह स्कन्द पुराण का एक अंश तथा तत्त्व संग्रह रामायण का मुख्य आधार माना जाता है। इस रामकथा में शिव का विशेष महत्त्व दिया गया है। शिव और राम की अभिन्नता का संकेत स्थान-स्थान पर मिलता है।

४—हनुमत्संहिता—

हनुमत्संहिता में अगस्त्य हनुमान संवाद के रूप में राम की रासलीला तथा जल-विहार का वर्णन तीन सौ साठ श्लोकों में विस्तार से किया गया है।

५—वृहत्कौशल खण्ड--

यह रामकथा राम की रासलीला से ही भरी हुई है। इसमें कृष्ण की रासलीला का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

संस्कृत ललित साहित्य में रामकथा—

संस्कृत के ललित साहित्य में रामकथा सम्बन्धी कथानक में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं पाया जाता। संस्कृत में महाकाव्य, खण्डकाव्य, स्फुट काव्य नाटक तथा कथा साहित्य में रामकथा की अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप में हुई है।

महाकाव्य—रामकथा से सम्बन्ध निम्नलिखित महाकाव्यों की रचना हुई है—

१—रघुवंश—बाल्मीकीय रामायण जब अपना वर्तमान रूप धारण कर चुका था उसके पश्चात् रघुवंश की रचना हुई। रघुवंश में नवें सर्ग से कथा का आरम्भ होता है। यह समस्त कथा बाल्मीकि कृत रामायण पर आधारित है।

२—रावण वध अथवा सेतुबन्ध—महाराष्ट्री प्राकृत की इस महाकाव्य के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रचयिता राजा प्रवरसेन मानें जाते हैं। रावणवध के १५ सर्गों में युद्धकाण्ड तक की रामकथा आयी है। राम-रावण युद्ध के प्रसंग का बड़े विस्तृत रूप तथा अलंकृत शैली में वर्णन किया गया है।

३—भट्टिकाव्य अथवा रावणवध—इस महाकाव्य के बाइस सर्गों में युद्ध काण्ड तक की रामकथा आयी है। भट्टिकाव्य में दशरथ के शैव होने का उल्लेख आया है।

४—जानकीहरण—कुमारदास द्वारा रचित जानकीहरण की रामकथा भी युद्धकाण्ड तक की है। बाल्मीकीय रामायण से इस रामकथा में भिन्नता नहीं के बराबर हैं। इस रामकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि २५ सर्गो के इस महाकाव्य ने श्रृंगारात्मक वर्णन पर्याप्त मात्रा में आया है।

५—रामचरित—अभिनन्द द्वारा रचित ३६ सर्गो वाले इस महाकाव्य में बनवास से लेकर युद्धकाण्ड तक की रामकथा आयी है।

६—रामायण मंजरी—कश्मीर निवासी क्षेमेन्द्र ने बाल्मीकिकृत रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ का ५३८६ श्लोकों में रामायण मंजरी के रूप में संक्षेप प्रस्तुत किया।

७—दशावतार चरित—क्षेमेन्द्र द्वारा ही रचित इस महाकाव्य में अन्य अवतारों के साथ राम की भी कथा आयी है।

८—उदार राघव—साकल्यमल्ल के इस महाकाव्य के अठारह सर्गों में से केवल नौ सर्ग उपलब्ध हैं। जिनमें शूर्पणखा विरूपण तक की कथा आयी है। कथा रामायण से मिलती-जुलती है। यह सारी रचना कृत्रिम है।

९—राघवोल्लास—इस महाकाव्य की रचना सम्भवतः रामलिंगामृतकार अद्वैत कवि ने की है। इसके प्रारम्भ के तीन सर्ग अनुपलब्ध है। शेष नौ सर्गो में लगभग एक हजार छन्द हैं।

१०—राम रहस्य अथवा रामचरित—मोहन स्वामी कृत इस महाकाव्य में सूर्यवंश वर्णन से लेकर रामचन्द्र के स्वर्गारोहण तक की रामकथा में मौलिकता लेशमात्र नहीं है।

इन उल्लिखित रामकथा सम्बन्धी संस्कृत महाकाव्यों के अतिरिक्त कई महाकाव्यों का उल्लेख मिलता है। डॉ० कामिल बुल्के लिखते हैं कि इन महाकाव्यों का कथानक की दृष्टि से कोई महत्त्व प्रतीत नहीं होता है।

ये महाकाव्य इस प्रकार है—

अभिनव भट्टवाण कृत रघुनाथ चरित
रघुनाथ उपाध्याय कृत राम विजय
रघुवीर चरित (रचयिता अज्ञात)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चक्रकविकृत जानकी परिणय

स्फुट काव्य--

रामकथा से सम्बन्धित कुछ स्फुट काव्य इस प्रकार हैं--

१—सन्ध्याकरनन्दी रचित रामचरित

२—कविराज माधव भट्ट रचित राघवपाण्डवीय

३—हरिदत्त सूरिकृत राघवनैषधीय

४—चिदम्बर कृत राघवपाण्डवयादवीय

५—गंगाधर महाडकर रचित संकट नाशस्तोत्र

नीति काव्य—

१—सन्नीति रामायण—इसके प्रत्येक श्लोक का पूर्वार्द्ध नीति शिक्षा से सम्बन्धित है तथा उत्तरार्ध रामकथा से सम्बन्धित है ।

विलोमकाव्य--

रामकथा से सम्बद्ध कुछ विलोम काव्य इस प्रकार है—

१—सूर्यदेव रचित रामकृष्ण विलोम काव्य

२—वेंकटध्वारिन् कृत यादवराघवीय

३—यादवराघवीय

चित्रकाव्य--

रामकथा से सम्बद्ध दो चित्रकाव्य उपलब्ध हैं—

१—कृष्णमोहन रचित रामलीलामृत

२—वेंकटध्वारिन् कृत यादवराघवीय

शृंगारिक खण्डकाव्य--

डॉ० कामिल बुल्के ने शृंगरिक खण्डकाव्यों को दो परम्पराओं में विभक्त किया है। उनके अनुसार शृंगारिक खण्ड काव्यों की सृष्टि विशेष कर मेघदूत तथा गीत गोविन्द के अनुकरण पर हुई है। मेघदूत के अनुकरण पर रचित शृंगारिक खण्डकाव्य मेघदूत के अनुकरण पर रचित

शृंगारिक खण्डकाव्य निम्न हैं—

१—वेदान्तचार्य द्वारा रचित हंस सन्देश अथवा हंसदूत

२—रूद्र वाचस्पति कृत भ्रमरदूत

३—वेंकटाचार्य कृत कोकिल

४—कपिदूत

४—कृष्णचन्द्र तर्कालङ्कार रचित चन्द्रदूत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ा त गोविन्द के अनुकरण पर रचित श्रृंगार काव्य—

अनुकरण पर रचे गये श्रृंगार काव्य निम्न हैं—

१—रामगीत गोविन्द

२—गीतराघव

३—जानकी गीता

४—संगीत रघुनन्दन

उल्लिखित स्फुटकाव्यों के अतिरिक्त अनेक रचनाओं का उल्लेख यहाँ वहाँ मिलता है। इनमें रामकथा की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय सामग्री नहीं मिलती इतना इससे अवश्य है कि रामकथा की लोकप्रियता तथा साहित्य में व्यापकता का प्रमाण मिल जाता है।

कुछ स्फुट काव्य इस प्रकार हैं—

विश्वनाथकृत राघवविलास

सोमेश्वरकृत रामशतक।

मुद्गलभट्टकत रामायशितक।

कृष्णेन्द्रकृत आयरिमायण। आदि।

नाटक—

संस्कृत का नाटक-साहित्य अत्यन्त प्राचीन तथा समृद्ध रहा है। उपजीव्य आदि महाकाव्य रामायण की रामकथा से साहित्य का कोई अंग छूटा नहीं है। रामकथा को लेकर नाटकों के अभिनय की परम्परा बहुत प्राचीन है। तथापि तदनन्तर रचित रामकथा से सम्बद्ध अनेक नाटक आज उपलब्ध हैं। इन नाटकों का राम-कथा परम्परा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

१—प्रतिमानाटक—भास रचित प्रतिमानाटक के सात अङ्कों में बाल्मीकीय अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु तथा सीताहरण का वर्णन किया गया है।

२—अभिषेक नाटक—भास द्वारा रचित इस नाटक में बालिवध से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की रामकथा बहुत कम परिवर्तन के साथ आयी है।

३—महावीर चरित—भवभूति द्वारा रचित इस नाटक में राम-सीता विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की कथा अङ्कों में वर्णित है। रामकथा की दृष्टि से इसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं।

४—उत्तरराम चरितम्—इस करुण रस प्रधान नाटक में भवभूति ने बाल्मीकीय उत्तरकाण्ड की रामकथा को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है।

५—उदात्तराघव—अनंगहर्ष मायुराज की इस रचना के छह अङ्कों में राम के वन-गमन से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की रामकथा आयी है।

६—कुन्दमाला—दिङ्नाग द्वारा रचित कुन्दमाला की कथावस्तु पर भवभूति के उत्तराम चरित का प्रभाव सुस्पष्ट है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

७—अनर्घराघव—मुरारि की इस रचना में रामकथा विश्वामित्र के आगमन से लेकर राम के अयोध्या प्रत्यागमन तथा अभिषेक की आयी है।

८—बाल रामायण—राजशेखर ने दस अंकों वाले इस नाटक में सीता स्वयंवर से लेकर रामाभषेक तक की कथा भवभूति तथा मुरारि के अनुकरण पर वर्णित है।

९—हनुमन्नाटक अथवा महानाटक—चौदह अंकों वाले नाटक को लेकर विद्वानों में सर्वाधिक वाद-विवाद है।

१०—आश्चर्य चूड़ामणि—इस नाटक में शूर्पणखा के आगमन से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक की रामकथा सात अंकों में आयी है।

११—प्रसन्न राघव—जयदेव द्वारा रचित इस नाटक में सीता स्वयंवर से लेकर राम के द्वारा रावण वध के पश्चात् अयोध्या-प्रत्यागमन तक की कथा सात अंकों में वर्णित है।

१२—उल्लासराघव—सोमेश्वर कृत इस नाटक में बालकाण्ड के अन्त से लेकर युद्ध काण्ड के अन्त तक की रामकथा का वर्णन आया है।

१३—अद्भुत् दर्पण—दक्षिण भारतीय महादेव के इस नाटक में राम को एक एन्द्रजालिक दर्पण द्वारा लंका की घटनाएं दिखलाये जाने का वर्णन है।

१४—जानकी-परिणय—इस नाटक के रचयिता दक्षिण भारतीय रामभद्र दीक्षित है। जानकी परिणय के इतने पात्र एक दूसरे का रूप धारण कर लेते हैं कि सम्पूर्ण नाटक हास्य प्रधान बन गया है।

अप्राप्य प्राचीन नाटक—

डॉ० कामिल बुल्के तथा डॉ० व्ही० राघवन ने कुछ अप्राप्य प्राचीन राम सम्बन्धी नाटकों के विषय में सामग्री एकत्रित की है। ये नाटक निम्नानुसार है—

राघवानन्द
मायापुष्पक
स्वप्नदशानन
क्षीर स्वामीकृत अभिनवराघव
कृत्यारावण
रामचन्द्रकृत रघुविलास तथा राघाभ्युदय
यशोवर्मनकृत रामाभ्युदय
रामानन्द
छलितराम

कथा—

साहित्य के अतिरिक्त रामकथा संस्कृत कथा साहित्य में भी आयी है परन्तु उसकी कोई विस्तृत परम्परा नहीं पायी जाती। संस्कृत कथा-साहित्य की सबसे प्राचीन रचना गुणाढ्यकृत वृहत्कथा में राम-कथा वर्णित हुई।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कथासरित्सागर—

सोमदेव की इस रचना में तीन बार रामकथा आयी है ।

चम्पू—

पन्द्रहवी शताब्दी के बाद रामकथा से सम्बन्धित विस्तृत चम्पू-साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सब अप्रकाशित हैं ।

गद्य—

वासुदेवकृत रामकथा सत्रहवीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध की गद्य रचना है । इसमें बाल्मीकीय छह काण्डों की संक्षिप्त कथा है । अनन्तभट्ट कृत एक अन्य रामकथा सम्बन्धी गद्य रचना रामकल्पद्रुम के नाम का उल्लेख मिलता है । आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा ।

विविध भाषा, धर्म, जाति सम्प्रदाय तथा प्रान्तों वाले भारतवर्ष की साँस्कृतिक एकता का प्रबल सूत्र रामकथा रही है, यह निर्विवाद सत्य है । भारत की आधुनिक भाषाओं के साहित्य में भी रामकथा की व्याप्ति अद्वितीय है । डॉ० कामिल बुल्के लिखते हैं कि सब (आधुनिक भारतीय) भाषाओं का सर्वप्रथम महाकाव्य प्राय कोई रामायण है तथा बाद की बहुत सी रचनाओं की कथावस्तु भी रामकथा से सम्बन्ध रखती हैं ।

द्रविड भाषाओं में रामकथा—

अ-तमिल रामकथा—द्रविड भाषाओं में तमिल भाषा का साहित्य प्राचीन है । तमिल का रामकथा सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ बारहवीं शताब्दी ई० का कम्बनकृत रामायण है । कम्बन के समकालीन ओट्टक्कूत्तर के अतिरिक्त एक अज्ञात कवि ने तक्कै रामायण की रचना की है । दूसरे एक अज्ञात कवि ने रामायण तिरुप्पुरुल की तथा अरुण गिरिनादर ने रामकथा पर रामनाडहम् नामक नाटक भी लिखा है ।

(आ) तेलुगु रामकथा——

तेलुगु में उपलब्ध रामकथा साहित्य कई श्रेणियों में बांटा जा सकता है । लघुगीत, लोकगीत शतक, महाकाव्य तथा नाटक आदि साहित्य के प्रत्येक अगोपांग में राम-कथा वर्णित है । श्री बालशौरि रेड्डी ने कुछ काव्यों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं—

१ द्विपद रामायण या रंगनाथ रामायण
२ निर्वचनोत्तर रामायण विक्कना
३ भास्कर रामायण
४ मोल्ल रामायण
५ रामायणमु
६ गोपीनाथ रामायणमु
७ अध्यात्म रामायणमु
८ सम्पूर्ण रामायणमु
९ शतकण्ठ रामायणमु
१० मोक्षगुण्डरामायणमु

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

११ उत्तररामायणमु	१२ बाल्मीकि रामायणमु (अनुवाद)
१३ श्रीमद्राणमायणु	१४ मानुकोड रामायणमु
१५ उत्तरराम चरितमु	१६ रामायण कल्पतरु
१७ दोड्डुरामायणमु	१८ कंबरामायणमु
१९ बालरामायणमु	२० विचित्र रामायणमु

तेलुगु में रामकथा विषयक कुछ नाटक भी विशेष उल्लेखनीय हैं जैसे—रामचरित, अनर्घराघवमु, अभिषेकनाटक, संतवेलरू रामनाटक, प्रतिमानाटक आदि। तेलुगु में रामकथा विषयक कुछ प्रमुख शतक इस प्रकार है—

१—दाशरथु शतकमु
२—रामलिंगेश शतक
३—जानकीपति शतक
४—रामशतक
५—रघुनायक शतक तथा रामशतक
६—प्रसन्न राघवशतक
७—कोदण्डरामशतक

(इ) कन्नड रामकथा—

कन्नड का रामायण की दृष्टि से केवल तोखे रामायण ही महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त एक अत्याधुनिक रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ रामायण दर्शन विशेष उल्लेखनीय है। इसके रचयिता प्रोफेसर कुप्पल्लि वेंकटप्प गौड़ पुटप्प हैं।

(ई) मलयालम रामकथा—

मलयालम रामकथा साहित्य अल्प प्रमाण में है। रामकथा सम्बन्धी निम्न रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

१ रामचरितम्	२ रामकथाष्पाट्टु
३ कष्णश्श रामायण	४ रामायण चपू
५ अध्यात्म रामायण	६ केरल वर्मा रामायण

(उ) आदिवासी रामकथाएं—

आदिवासी साहित्य कहीं सुरक्षित उपलब्ध नहीं होता। केवल राम सम्बन्धी कुछ दन्त कथाओं का वर्णन मिलता है। डॉ० कामिल बुल्के ने बाल्मीकीय रामायण के वानर, ऋक्ष, राक्षस आदि वास्तव में आदिवासी ही है, यह बतलाने का प्रयास किया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में रामकथा—

हिन्दी में लिखे गये रामकथा सम्बन्धी साहित्य का विवेचन तुलसीदास को मध्यवर्ती रखकर किया जा सकता है। तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा साहित्य अधिक विस्तृत नहीं है तथा तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा साहित्य तुलसीदास के रामचरितमानस की तुलना में अकिंचन है। अतएव इस प्रकरण को तीन विभागों में विभक्त करना ठीक होगा—

१—तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा
२—तुलसीदास की रामकथा तथा
३—तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा

तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा--

हिन्दो में सर्वप्रथम पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदवरदायी के बिवादग्रस्त महाकाव्य पृथ्वीराज रासो के द्वितीय प्रस्ताव में रामकथा का वर्णन आया है। चन्दवरदायी की रामकथा के बाद प्रायः एक सौ वर्षों के पश्चात् रामकया सम्बन्धी वर्णन स्वामी रामानन्द आदि कृतियों में मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १६४१-४३ की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास कृत भाषा बाल्मीकि रामायण नामक रचना का उल्लेख किया गया है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के ईश्वरदास की रामकथा सम्बन्धी तीन रचनाएं--भरत विलाप, अंगद पैज और रामजन्म उपलब्ध हैं। सूरदास के सूरसागर में बाल्मीकीय रामायण के क्रमानुसार राम जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक रामकथा के मार्मिक स्थलों पर लगभग १५० पद हैं। इसके अतिरिक्त अग्रदास ने अष्टयाम में तथा नाभादास ने अष्टयाम में रामकथा का वर्णन किया है।

तुलसीदास की रामकथा--

हिन्दी रामकथा साहित्य में तुलसी का अद्वितीय स्थान है। इनकी समस्त रचनाएं रामकथा से सम्बन्ध रखती हैं।

समकालीन रामकथा सम्बन्धी कुछ रचनाएं इस प्रकार हैं--

सोढ़ी मेहरबान आदि रामायण (हिन्दी मिश्रित पंजाबी)

लालदास—अवध विलास

लक्ष्मरामायण तथा राजस्थानी का विस्तृत जंनी राम साहित्य विशेषकर समय सुन्दर कृत सीताराम चौपाई।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अथवा उत्तरकाल में अपवाद शास्त्र के सम्भव में भी बाध्य–बाधकभाव स्वीकार किया जाता है। अन्यथा 'सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयताम्, तक्रं कौण्डिन्याय' इस वाक्य में तक्रदान से दधिदान का बाध नहीं हो सकता है। क्योंकि दधिदान के पूर्व का या उत्तरकाल में तक्रदान तो सम्भव है ही। अतः येन नाप्राप्ति–न्याय का आश्रयण लेकर बाध्य–सामान्यचिन्ता पक्ष में वृद्धि अन्तरङ्गमात्र का बाधक हो सकता है। ज्ञापक अनावश्यक ही है। बाध्यविशेष चिन्ता पक्ष का आश्रय लेने पर 'मध्येऽपवादन्याय' से वृद्धि केवल उवङ् का ही बाधक होगी गुण का बाधक नहीं हो सकेगी। इस तरह वृद्धि की अपेक्षा पर होने के कारण गुण ही बलवान् होकर बाधक होगा। 'मध्ये पठिता ये अपवादाः ते पूर्वान् विधीन बाधन्ते नोत्तरन्' यही मध्येपवादन्याय का स्वरूप है। सिच् परे वृद्धि मध्यवर्ती अपवाद है। वह स्वपूर्ववर्ती उवङ् का बाध कर सकता है परन्तु स्वोत्तरवर्ती गुणशास्त्र का बाध नहीं कर सकता। इस तरह अकोषीत् आदि प्रयोगों में वृद्धि की अपेक्षा गुण बलवान् होने के कारण वृद्धि का बाधक हो जायगा। तदनन्तर लघु उपधा के अभाव में वृद्धि की प्राप्ति सम्भव न होने के कारण अतोहलादेर्लघोः सूत्र में अकार ग्रहण व्यर्थ ही है। अकुरीत् आदि प्रयोगों में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये भी अकार ग्रहण आवश्यक नहीं हो सकता। क्योंकि यहां भी अन्तरङ्ग गुण द्वारा वृद्धि का बाध हो जाने पर गुण का विङति च से निषेध होने में वृद्धि की प्रवृत्ति सम्भव नहीं हो सकती। जैसे देवदत्त के हन्ता का हनन कर देने पर भी देवदत्त नहीं हो सकता है अतएव भाष्यकार ने अपवाद प्रतिषिद्धे उत्सर्गोऽपि न भवत्वि अपवाद के निषिद्ध हो जाने पर उत्सर्ग भी प्रवृत्त नहीं होता है, इसे स्वीकार कर सुजाते अश्व सूनृते इत्यादि प्रयोगों में पूर्वरूप का निषेध होने पर अयादि आदेश का भी अभाव दिखाया है—पूर्वरुपे प्रतिषिद्धे अयादयोऽपि न भवन्ति। इस तरह बाध्यविशेष–चिन्तापक्ष का आश्रयण करने पर अतो हलादेर्लघोः सूत्र में अकार ग्रहण को 'न सिच्यन्तरङ्ग भवति' इस वचन में ज्ञापक ही स्वीकार करना पड़ेगा। अतएव भाष्यकार ने 'यच्च करोत्यकारग्रहणं लघोरिति कृतेऽपि' यह कह कर ज्ञापक का पुनः उपन्यास किया है। यदि भिद्योद्धयौ नदे, तौ सत् इत्यादि निर्देश के अनुसार 'अपवादे प्रतिषिद्धे उत्सर्गोऽपि न भवति' इस न्याय को सार्वत्रिक मानना उचित नहीं होगा, अन्यथा वृक्षौ आदि प्रयोगों में नादिचि द्वारा अपवाद भूत पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होने पर पुनः वृद्धिरेचि से वृद्धि की प्रवृत्ति सम्भव नहीं हो सकेगी। इस तरह 'तौ, भिद्योद्धयो,' आदि सभी निर्देष असंगत हो जायेंगे। ऐसे स्थल में देवदत्त हन्तृहतन्याय भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि देवदत्त के हन्ता का विनाश होने पर देवदत्त का उज्जीवन न भी हो किन्तु देवदत्त को मारने के लिये समुद्यत व्यक्ति का समुद्यमकाल में ही यदि हनन कर दिया जाय तो अवश्य ही देवदत्त का उज्जीवन होगा। इसी तरह उत्सर्ग के हनन के लिये समुद्यत अपवाद शास्त्र का समुद्यमकाल में ही निषेध होने पर उत्सर्ग शास्त्र की प्रवृत्ति में कोई बाधा नहीं हो सकती। इस तरह स्वीकार किया जाय तो बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष का आश्रयण कर येन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाप्राप्ति न्याय से ही सिच्यन्तरङ्गं न भवति, इस वचन का साधन करना आवश्यक होगा। इस तरह पक्ष भेद के अनुसार बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष में येन नाप्राप्तिन्याय द्वारा ही सिच्यन्तरङ्ग न भवति इस वचन की सिद्धि हो सकती है। बाध्यविशेष चिन्ता पक्ष में अतोहलादेर्लघोः सूत्र में अकारग्रहण इस वचन का ज्ञापक होगा। शब्दकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षित ने इस सन्दर्भ के अन्त में स्पष्ट लिखा है—तथा च पक्षभेदा-श्रयेणातो हलादेरित्यङ्ग्रहणमपि ज्ञापकमिति स्थितम्। सर्वथा इस वचन को स्वीकार करना चाहिए—क्योंकि इस वचन का प्रयोजन स्पष्ट है, यदि सिच् के विषय में अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति स्वीकार की जाय तो यङ्लुगन्त चिधातु, नीधातु तथा चिरि, जिरि, आदि धातु से लुङ् सिच् में अचेचायीत्, अनेनायीत्, अचिरायीत्, अजिरायीत् आदि प्रयोग सिद्ध नहीं होंगे। क्योंकि वृद्धि की अपेक्षा पहले अन्तरङ्ग होने के कारण गुण तथा अयादेश कर देने पर यान्त हो जाने से ह्म्यन्तक्षणश्वस्जागृणिश्व्येदिताम् सूत्र से वृद्धि के निषेध की प्रसक्ति हो जायगी।

इस तरह यह वचन सप्रयोजन होने के कारण अवश्य ही शास्त्रशेषत्वेन स्वीकरणीय है। बाध्य-विशेषचिन्तापक्ष में मध्येपवादन्याय द्वारा उवङादेश का ही बाध किया जा सकता है, गुण का बाध सम्भव नहीं होगा। अतः उक्त प्रयोगों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। इसलिये—सिच् के विषय में समस्त अन्तरङ्गों के बाध की सिद्धि के लिये बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष का ही आश्रयण करना चाहिये। इसी सिद्धान्त के उपपादन के लिये भाष्यकार ने ज्ञापक का उपन्यास किया है। यदि सिच् के विषय में समस्त अन्तरङ्गों का बाध येन नाप्राप्तिन्याय से ही सिद्ध हो सकता तो भाष्यकार द्वारा ज्ञापक का उपन्यास सर्वथा व्यर्थ हो जायगा। अतः आध्यसामान्य चिन्तापक्ष के आश्रयणार्थ ही यह ज्ञापक स्वीकरणीय है। ऐसी स्थिति में कैयट ने जो यह कहा है कि 'न्यायादप्येतत्सिध्यति, येन नाप्राप्तिन्यायेनान्तरङ्गस्य वृद्धया बाधात्। इति। यह विचारसंगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि सिच् के विषय में समस्त अन्तरङ्गों का बाध सर्वथा न्यायसिद्ध होता तो ज्ञापकोपन्यास निरर्थक ही हो जाता।

इस परिस्थिति में न्यनुवीत् न्यधूवीत् इत्यादि प्रयोगों में वृद्धि के निषेध के लिये क्ङिति च सूत्र की प्रवृत्ति आवश्यक है। क्ङिति च इस निषेध–सूत्र की प्रवृत्ति वृद्धि के इग्लक्षणात्व के बिना सम्भव नहीं होगी। अतः वृद्धि में इग्लक्षणत्व सिद्ध करने के लिये इकोगुणवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण भी आवश्यक ही है। तथा सिच् के विषय में अन्तरङ्गमात्र के लाभ के लिये वाध्यसामान्यचिन्तापक्ष के आश्रयण द्वारा 'सिच्य-न्तरङ्ग न भवति' यह सिद्धान्त रूप वचन भी अत्यन्त आवश्यक है। इस सिद्धान्त के साधन के लिये ज्ञापक का उपन्यास भी अत्यन्त आवश्यक है।

१०––भवत्युपधालक्षणस्य गुणस्य प्रतिषेध इति

क्ङिति च सूत्र में भाष्यकार ने विचार किया है कि इस सूत्र से निमित्त ग्रहण करना चाहिये।

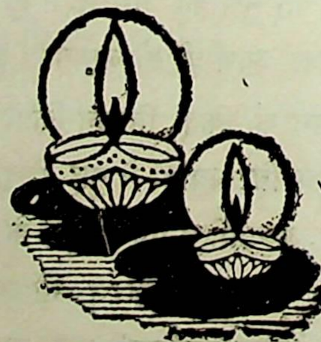
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यदि कित् ङित् परे रहते प्राप्त गुण का निषेध किया जाय तो उपधा में प्राप्त गुण का निषेध नहीं होगा। भिन्नः भिन्नवान् आदि प्रयोगों में सिद्ध धातु से निष्ठा प्रत्यय परे रहते पुगन्तलघूपधस्त सूत्र से भिद् में इकार के स्थान में गुण प्राप्त है। वह इकार निष्ठा प्रत्यय से अव्यवहित पूर्व न होने के कारण उसके स्थान में प्राप्त हुए गुण का निषेध क्ङिति च सूत्र द्वारा नहीं होगा। इस तरह भिन्नः भिन्नवान् में गुण निषेध की सिद्धि नहीं होगी। केवल चितः स्तुतः आदि प्रयोगों में ही गुण का निषेध सिद्ध होगा अतः इस सूत्र में निमित्त ग्रहण करना आवश्यक है। निमित्त ग्रहण करने पर कित्, ङित् को निमित्त मान कर होने वाले जो गुण तथा वृद्धि, वह नहीं होते हैं। इस तरह की व्याख्या सूत्र की होगी। इस व्याख्या में भिन्नः, भिन्नवान् आदि प्रयोगों में गुण के निषेध की सिद्धि हो सकती है, क्योंकि भिन्नः में जो गुण प्राप्त है वह कित् निष्ठा प्रत्यय को निमित्त बनाकर ही प्राप्त है उसका निषेध हो सकेगा। इस तरह उपधा गुण के निषेध के लिये क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण की आवश्यकता सिद्ध करने के बाद निमित्त ग्रहण का प्रत्याख्यान भी भाष्य में किया गया है—उपधार्थेन यावन्नार्थः इति। अर्थात् उपधागुण के निषेध के लिये जो निमित्त ग्रहण की आवश्यकता बताई गई है वह अनावश्यक है, अर्थात् निमित्त ग्रहण के बिना भी भिन्नः, भिन्नवान् आदि प्रयोगों में गुण निषेध की सिद्धि हो जायगी। उपधागुण के निषेध के साधन के लिये भाष्य में अनेक उपायों का प्रदर्शन किया गया है, उनमें यह भी एक उपाय भाष्यकार ने बताया है "अथवाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्युपधालक्षणस्य गुणस्य प्रतिषेधः, इति।" यदयं त्रसिगृधि धृषि क्षिपेः क्नुः, 'इको झल्, हलन्ताच्चेति क्नुसनौ कितौ करोति। अर्थात् त्रसि गृधि धृषि क्षिपेः क्नुः सूत्र में जो क्नु प्रत्यय को कित् किया गया है, इससे ज्ञापित हो रहा है कि उपधा स्थानिक गुण का भी क्ङिति च सूत्र से निषेध से होता है। क्योंकि क्नु प्रत्यय के कित् करने का यही प्रयोजन है कि गृध्नुः, धृष्णुः क्षिप्नुः प्रयोगों में गृध, धृष्, क्षिप् धातु से उपधा को कथाचित् गुण की प्रसक्ति न हो। यदि यहां कित् प्रत्यय से अव्यवहित पूर्व न होने के कारण कित्करण सर्वथा व्यर्थ ही हो जायगा। इसी तरह 'हलन्ताच्च' सूत्र में इको झल् की अनुवृत्ति कर इक् समीप झलादि सन् को कित् विधान किया जाता है। इस कित् विधान का भी प्रयोजन यही है कि जुघुक्षति, विभित्सति आदि प्रयोगों में गुह, भिद् आदि धातु से सन् प्रत्यय करने पर उपधा गुण न हो। यदि कित् प्रत्यय सन् से अव्यवहित पूर्व न होने के कारण गुण के निषेध की प्रवृत्ति न स्वीकार की जाय तो 'हलन्ताच्च' सूत्र द्वारा सन् का कित्करण भी व्यर्थ ही हो जायगा। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य ने यह अनुभव किया है कि 'उपधास्थानिक' गुण का भी निषेध क्ङिति च सूत्र से होता है। इसीलिये क्नु प्रत्यय तथा सन् प्रत्यय को कित् विधान किया है। इस कित्करण द्वारा यह अनुमान किया जा सकता है कि क्ङिति च सूत्र में 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' यह परिभाषा अव्यवधानांश-विकल होकर ही उपस्थित होती है। केवल पूर्व पर के सन्देह की निवृत्ति के लिये पूर्व मात्र का निश्चय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस परिभाषा द्वारा होता है । अव्यवधानांश का उक्त कित्करण को देखकर परित्याग कर दिया जाता है । कैयट ने इसी सन्दर्भ को लेकर स्पष्ट किया है कि—लिङ्गान्निर्दिष्टाङ्ग विकला 'तस्मिन्निति परिभाषो–पतिष्ठत इत्यर्थ ।' इस तरह क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण के प्रत्याख्यानार्थ अनेक उपायों का प्रदर्शन करते हुए भाष्यकार ने इस ज्ञापक का भी प्रत्यख्यानोपाय रूप में उपन्यास किया है । क्ङिति च सूत्र में पर सप्तमी स्वीकार करने पर भी इस ज्ञापक से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' परिभाषा की उपस्थिति अव्यवधानांश विकल होने के कारण कोई दोष नहीं होगा । क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण अनावश्यक ही है। यही भाष्य का तात्पर्य है, एतदर्थं ही इस ज्ञापक का उपन्यास किया गया है । ज्ञापक द्वारा तस्मिन्नितिनिर्दिष्टे पूर्वस्य परिभाषा की उपस्थिति अव्यवधानांश विकल स्वीकार करने पर नेनिक्ते आदि प्रयोगों में अभ्यास के गुण का निषेध नहीं किया जा सकता है क्योंकि 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' इस न्याय से एक वर्ण के व्यवधान में निषेध स्वीकार किये जाने पर भी अनेक वर्णों के व्यवधान में निषेध प्रवृत्ति नहीं हो सकती है । अतः कोई दोष नहीं होगा । ज्ञापक द्वारा भी क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण का प्रत्याख्यान संगत ही है ।

(क्रमशः)



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जन्तुभिः (ऋत्विग्भिः) (३-२-५)
विप्रेभिः (मेधाविभिः ऋत्विग्भिः) (१-२-६)
दाशुषे (यजमानाय) (१-१४०-२)
क्षितयः (मनुष्याः ऋत्विजः) (६-१-५)
कविभिः (मेधाविभिः ऋत्विग्भिः) (१-७६-५)
कवयः (क्रान्तदर्शिनो अध्वर्यवः) (३-८-४)

मातरिश्वा (मातरि यागे श्वसिति चेष्टते इति मातरिश्वा—यजमानः) इत्यादि बहुत्र प्रक्रान्तम् । अहो नु खलु कीदृशः पाण्डित्यप्रौढ़िमा पण्डितमण्डलाखण्डलस्य सायणास्यास्य ? कीदृशी च पुनः यज्ञपरार्थ-प्रवणता कर्मकाण्डप्रकाण्डपण्डितस्य, यः को वापि शब्दः बलाद् यजमानपरत्वेनैवानेनायोज्य व्याख्यातः । नासौ प्रायशः प्रकरणमनु सन्दधाति न देवतामामन्त्रयते, नार्थान्तरप्रसरमपि मनागवतारयति बुद्धिपद्धतिम् । न कदाचित् कथञ्चिदपि च विरमयति यज्ञपुरुषम् । यथा मृगतृष्णिकयाकृष्टो मृगो जलमेवानुसन्दधाति यत्र-तत्र-सर्वत्र, तथैवासावपि खलु न क्षणमपि विजहाति यज्ञानुषङ्ग प्रसङ्गम् । यथा च "पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंसकुलावतंस !" एवमेव यज्ञयागादिरागरञ्जितनयनयुगलोऽसौ सर्वत्र मन्त्रेषु यज्ञमेव खल्वाकलयति बहुशः । "यज्ञापरं किमपि तत्त्वमहं न जाने" इति मूल मन्त्र इवानेन स्वीकृतोऽवभाति । अहो नु खलु अस्य महामेधाविनः प्रदीप्तप्रज्ञावतोऽपि सायणस्य कीदृशोऽयं मतिविभ्रमः ? नूनं तच्छोचनीय-मेवाभवत् । मन्यामहे अत्र हि किल तदीयकालेऽभितः प्रसृतचण्ड कर्मकाण्डस्याखण्डसाम्राज्यमेव भूम्ना-ऽपराध्यति । कारणान्तरन्तु निपुणं मृग्यमाणमपि नाधिरोहति प्रज्ञानपदवीमितिदिक् । यद्यपि नाम क्वचित्-क्वचित् तेन वैज्ञानिका अप्यर्था निरतिशय पाटवेन कृताः किन्त्वतिवैरल्येन । भवतु नामैतत्, तथापि एतत्तु निश्चितं यत् सायणाचार्योऽयं वेदविद्यासम्भारभासुरः सुयशः शरीरेणाप्यद्यापि जीवति जीविष्यति च कल्पा-न्तपर्यन्तमित्यत्र न कश्चन संशय इति ॥



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गतांक से आगे—

महाभाष्योक्त ज्ञापक और उनके मूल स्रोतों का अध्ययन—

—डॉ० रामप्रकाश शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

तथापि 'गापोष्टक्' सूत्र में टक् प्रत्यय के कित्करण को, जिसका प्रयोजन केवल आकार लोप ही है, अन्य किसी प्रयोजन की सम्भावना नहीं है, ज्ञापक रूप में उपन्यस्त कर न कारस्य गुणो भवति' इस वचन को ज्ञापित किया गया है। इस तरह 'इको गुणवृद्धी' सूत्र में इग्ग्रहण के अभाव में भी आकार के स्थान में गुण की आपत्ति सम्भव न होने के कारण याता वाता आदि प्रयोगों में कोई शेष नहीं होगा। आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति के लिये इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण को कोई आवश्यकता नहीं है। अर्थात् इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण का प्रयोजन आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति नहीं ही है। अन्त में व्यंजन के स्थान में गुण की निवृत्ति को प्रयोजन सिद्ध कर इक् के ग्रहण को सार्थक सिद्ध किया गया है। इसी प्रसंग में श्री भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' में स्पष्ट कहा है कि–'उक्तरीत्या ज्ञापकेनैवा–त्सन्ध्यक्षराणां का विधान किया है। जन धातु के न के स्थान में गुण करने पर एकार ओकार गुण की प्रसक्ति नहीं हो सकती क्योंकि अर्धमात्रिक व्यञ्जन के स्थान में मात्राद्वयन्यूनकालिकत्वेन अन्तरतम होने के कारण एक मात्रिक अकार ही गुण प्रसक्त होगा। यदि अनुनासिक नकार के स्थान में अनुनासिक अकार गुण की प्राप्ति की सम्भावना हो तो वह पररूप द्वारा शुद्ध हो जायगा। इस तरह सप्तम्यां जनेर्डः सूत्र में ड–प्रत्यय के डित्करण द्वारा 'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' इस वचन के ज्ञापित हो जाने के कारण कोई दोष नहीं हो सकता 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में इक् का ग्रहण नहीं करना चाहिये। अन्त में भाष्यकार ने नगः अगः आदि प्रयोग सिद्ध करने के लिये गम् धातु से मकार के स्थान में यदि गुण किया जाय तो स्थान कृत् आन्तरतम्य को लेकर मकार के स्थान में ओकार गुण प्राप्त होने लगेगा। नगः आदि प्रयोगों की सिद्धि नहीं होगी। अतः इकोगुणवृद्धी सूत्र में इग्ग्रहण अवश्य कर्तव्य है। कैयट ने 'गमेरप्ययं डो वक्तव्यः' इस भाष्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि—सप्तम्यां जनेर्ड इत्यतोऽन्येष्वपि दृश्यत इत्यइ डोऽनुवर्तमानो गमेरपि विधीयत इत्यज्ञापकं डित्वमिति व्यञ्जननिवृत्यर्थ सूत्रं स्थितम्' अर्थात् सप्तम्यां जनेर्डः सूत्र के उत्तर में पढ़े गये अन्येष्वपि दृश्यते, सूत्र में दृशिग्रहण के सामर्थ्य से गम् धातु से ड प्रत्यय सिद्ध हो सकता है, गम् धातु से ड प्रत्यय करने के लिये पृथक्-पृथक् अनावश्यक है। अतः नगः आदि प्रयोग की सिद्धि से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लिये डप्रत्यय का डित्करण आवश्यक है। इसके द्वारा 'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' वचन ज्ञापित नहीं हो सकता। अतः इक् का ग्रहण 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में आवश्यक है।

'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' यह वचन भी पूर्वपक्ष की स्थापना के लिये प्रांसगिक रूप में उपन्यस्त है। अतः इसे शास्त्रशेष वचन के रूप में इस शास्त्र में मान्यता नहीं दी गई है।

९- न सिच्यन्तरङ्गं भवति

यह वचन भी 'इको गुणवृद्धी' सूत्र के भाष्य में उपन्यस्त है। इको गुणवृद्धी सूत्र में वृद्धि ग्रहण की आवश्यकता पर विचार करते हुए भाष्यकार ने कहा है कि—सिजर्थ वृद्धिग्रहणं कर्तव्यम्। सिचि वृद्धिरविशेषेणोच्यते सेको यथास्यादनिको मा भूदिति, अर्थात् सिचिवृद्धिः परस्मैपद्वेषु सूत्र द्वारा सिच् परे रहते वृद्धि का विधान स्थानी के निर्देश के बिना ही किया गया है, यह वृद्धि इक् के स्थान में ही हो अनिक् के स्थान में न प्राप्त हो अतः 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक है ताकि वृद्धिविधायक सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में इक् पद उपस्थित होकर अनिक् के स्थान में वृद्धि होने से रोक सके। अन्यथा अचिकीर्षीत् इत्यादि प्रयोगों में अकार के स्थान में वृद्धि की प्रसक्ति होने लगेगी। यदि इन प्रयोगों में वृद्धि को बाध कर 'अतोलोपः' की प्रवृत्ति होने के कारण दोष नहीं हो सकता है तो अयासीत्, अवासीत् आदि प्रयोगों में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये इकोगुवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक ही है। इस तरह सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में अनिक् की व्यावृत्ति के लिए इक् के सम्बन्धार्थ इकोगुणवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण की आवश्यकता के विचार के प्रसंग में सभी उदाहरणों का प्रौढ़ि द्वारा खण्डन कर अन्त में भाष्यकार ने पुनः कहा कि—'उत्तरार्थमेव तर्हि सिजर्थ वृद्धिग्रहणम् कर्तव्यम्। सिचि वृद्धिरविशेषेणोच्यते सा क्डिति मा भूत्–न्यनुवीत्, न्यधुवीत्। 'णू स्तवेन, धू विधूनने, धातु से लुङ् लकार में नि उपसर्ग लगाकर न्यनुवीत् न्यधुवीत् प्रयोग सिद्ध किये गये हैं। इन प्रयोगों में नू धू धातु से लुङ् तिप् सिच् इडागमादि कार्य हो जाने के बाद 'गाङ्कुदादिभ्यो ऽञ्णि न्ङित् सूत्र से प्रत्यय के ङित्व हो जाने पर क्ङिति च सूत्र से वृद्धि के निषेध के लिये सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र द्वारा विहित वृद्धि को इग्लक्षण वृद्धि बनाने के लिये इकोगुणवृद्धि सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक है। अन्यथा सिचिवृद्धिः परमैपदेषु सूत्र में इक् पद की उपस्थिति न होने के कारण इस सूत्र से प्राप्त वृद्धि इग्लक्षणवृद्धि नहीं मानी जा सकेगी, अतः क्ङिति च सूत्र द्वारा इसका निषेध नहीं होगा। इस तरह न्यनुवीत्, न्यधुवीत् प्रयोगों की सिद्धि सम्भव नहीं होगी अतः क्ङिति च सूत्र से निषेध सिद्धि के लिये सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में इक् का सम्बन्ध आवश्यक है। एतदर्थ 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक ही है।

इस प्रयोजन का भी खण्डन करते हुए भाष्यकार ने कहा कि 'नि+अनु इसईत्' नि अ धू इस्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ईत्' इस अवस्था में 'आश्रिश्नुधातुभ्रुवा टवोरियङुवङ्कं' सूत्र द्वारा उवङादेश वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने के कारण पहले उवङादेश हो होगा तदनन्तर अन्त में अच् वर्ण के न होने से इस सूत्र की प्राप्ति सी नहीं रह जायगी। अर्थात् अन्त में हल् के वर्ण के रहने पर वदव्रतहलन्तस्या चः सूत्र से हलन्तलक्षणवृद्धि की ही प्राप्ति के कारण सिचिवृद्धिः परमैपदेषु सूत्र की प्रवृत्ति केवल अजन्त स्थल में ही होगी। यहाँ अन्त में अच् वर्ण न होने के कारण सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। इस तरह यदि सिच के विषय में अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति इकोगुणवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण की आवश्यकता नहीं रह जातो है। परन्तु सिच् के विषय में वृद्धि को अपेक्षा अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति ही उचित नहीं है। इस विषय में अनेक प्रयोगों में दोष तथा उसका उद्धार दिखाते हुए भाष्यकार ने इस सिद्धान्त को ज्ञापक द्वारा प्रमाणित किया है— एवं तहर्याचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'न सिच्यन्तरङ्गं भवति' इति। यदयम् अतो हलादेर्लवोरित्यकारग्रहणं करोति। अतो हलादेर्लवोः' सूत्र में अकारग्रहण अकोषीत्, अमोषीत् (कुष् धातु मुष् धातु) में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये किया गया है। यदि सिच् के विषय में वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग की प्रभृत्ति होती तो यहाँ अन्तरङ्गत्वाद् गुण किये जाने के बाद लघु उपधा के अभाव में ही वृद्धि नहीं होती इस सूत्र में अकारग्रहण व्यर्थ ही हो जायगा। किन्तु आचार्य ऐसा समझ रहे हैं कि 'न सिच्यन्तरङ्गं भवति' इति। अर्थात् सिच् के विषय में अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति नहीं होती है। 'अकुटीत्' (कुट् धातु) इत्यादि प्रयोगों में उकार के स्थान में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये अकार ग्रहण को सार्थकता नहीं कहीं जा सकती है, क्योंकि अन्तरङ्ग होने से वृद्धि को बाध कर प्रवृत्त हुए गुण का 'क्ङिति च' सूत्र द्वारा निषेध हो जाने पर भी देवदत्तहन्तृहतन्यायेन वृद्धि की प्रवृत्ति ही सम्भव नहीं है। देवदत्त के हन्ता का नाश होने पर भी देवदत्त का उज्जीवन सम्भव नहीं ही है। इस तरह अतो हलादेर्लवोः सूत्र में अकार ग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापित कर ही रहा है कि सिच् के विषय में अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति नहीं होती है। 'न सिच्यन्तरङ्ग भवति इति। सिच् के विषय में वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति न होना न्यायसिद्ध भी है। क्योंकि येन नाप्राप्ति-न्याय से सिच् परे वृद्धि द्वारा अन्तरङ्ग का ही बाध हो जायगा। इस तरह अपवाद पक्ष में इस ज्ञापक का कोई उपयोग नहीं है। अतएव भाष्यकार ने यदि तर्हि सिच्यन्तरङ्ग भवति अकार्षीत्, अहार्षीत्, गुण कृते रपरत्वे चा नान्त्यत्वावृद्धिर्न प्राप्नोति। इस भाष्य में 'यदि तर्हि, शब्द से वृद्धि की अपवादता स्वीकार करते हुए उसके विषय में अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति को दोषपूर्ण सूचित किया है। अर्थात् बाध्य-सामान्यचिन्ता पक्ष में अन्तरङ्ग की अवश्य प्राप्ति में ही वृद्धि का आरम्भ होने के कारण वृद्धि बाधक हो जायगी। 'यत्कर्तृकावश्य प्राप्तो यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति। यह येन नाप्राप्ति न्याय का स्वरूप है। इस न्याय से स्वप्राप्तिकाल में अवश्य प्राप्त होने मात्र से ही बाध्यबाधकभाव स्वीकार किया जाता है, न कि सर्वथा निरवकाश होने पर ही, 'सत्यपि संभवे बाधनं भवति' उत्सर्ग शास्त्र की प्रवृत्ति के पूर्वकाल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा—

सन् १६६८ में सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा लिखी रामवतार कथा गोबिन्द रामायण के नाम से प्रकाशित हुई है।

रीतिकालीन हिन्दी राम–कथा साहित्य अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। रामकथा से सम्बद्ध खड़ी बोली गद्य की तीन रचनाएं उपलब्ध होती है—दौलतराम का पद्मपुराण (सन् १६५१) रामप्रसाद निरंजनी का योगवासिष्ठ (सन् १७४१) तथा सदल मिश्र का रामचरित (अध्यात्म रामायण का अनुवाद सन् १८०७)। प्राचीन परम्परा के कवियों के रामकथा से सम्बद्ध प्रबन्ध काव्य भी उपलब्ध होते हैं— जैसे रसिक बिहारी का रामरसायन, रघुनाथदास का विश्रामसागर रघुराजसिंह का रामस्वयंवर, वाघेली कुवरि का अवधविलास, बलदेवप्रसाद मिश्र का कौशल किशोर मैथिली में चन्दा झा का रामायण, शिवरत्न शुक्ल का श्रीरामावतार वंशीधर शुक्ल का रामभडैया तथा रामनाथ ज्योतिषी का श्रीरामचन्द्रोदय।

खड़ी बोली का आधुनिक रामकथा साहित्य काफी सम्पन्न है। रामचरित उपाध्याय का रामचरित 'चिन्तामणि, मैथिलीशरण गुप्त का साकेत अयोध्यासिंह उपाध्याय का वैदेही बनवास, बलदेव प्रसाद कृत साकेत सन्त, केदारनाथ मिश्र कृत कैकेयी तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत उर्मिला का हिन्दी रामकथा साहित्य में अपना-अपना विशेष स्थान है।

मराठी रामकथा—

मराठी रामकथा साहित्य में एकनाथ द्वारा रचित भावार्थ रामायण सबसे बड़ा तथा सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। एकनाथ के प्रपौत्र मुक्तेश्वर का संक्षेप रामायण, समर्थ रामदास के दो रामायण, वेणाबाई देशपाण्डे कृत सीता स्वयंवर तथा एक अन्य रामायण तथा वामनपण्डित, जयाराम स्वामी वाडगौवकर एवं नागेश के सीता स्वयंवर ग्रन्थ उपलब्ध हैं। श्रीधर स्वामीकृत रामविजय परवर्ती मराठी रामकथा साहित्य का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है। तजावर के कवि माधव की श्लोकबद्ध रामायण एवं ओविबद्ध रामायण आनन्दतनय की श्लोकबद्ध रामायण एवं सीता स्वयंवर भी उल्लेखनीय रामकथाएं हैं। इसके अतिरिक्त अठारहवीं–उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में मराठी रामकथा बराबर लिखी गयी है।

बंगला रामकथा—

बंगला रामकथा की प्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रचना कृतिवास रामायण है। सत्रहवीं शताब्दी का बंगला रामकथा साहित्य त्रिविधि है—रामलीला पदावलियाँ अद्भुत रामायण के अनुवाद तथा अध्यात्म रामायण के अनुवादों के रूप में। अठारवीं शताब्दी की प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रामानन्द यति तथा रामानन्द घोष कृत रामलीला वा श्रीराम पांचाली
जगरामरायकृत अद्भुत् रामायण
कमललोचन कृत रामभक्ति रसामृत
हरिमोहन गुप्त कृत अद्भुत् रामायण

इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं, बीसवीं शताब्दी में अनेकों रचनाएं लिखी गयी है।

उड़िया रामकथा—

उड़िया के सर्वप्रथम रामकथाकार १५वीं शताब्दी के सिद्धेश्वर परिडा अथवा सारलादास हैं। उडिया का रामकथा साहित्य अत्यन्त विस्तृत हैं। अब तक अनेकानेक विधाओं में रामकथा सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि बराबर होती जा रही है।

असमिया रामकथा—

बंगला एवं उड़िया भाषाओं के अनुसार ही असमिया में भी रामकथा सम्बन्धी साहित्य मिलता है। प्राचीनतम रामकथा साहित्य का माधवकदली कृत रामायण अत्यधिक लोकप्रिय है।

गुजराती रामकथा—

गुजराती में कृष्ण कथा अधिक प्रिय है, तथापि लगभग पचास कवियों की राम-कथा विषयक कृतियां उपलब्ध हैं।

सिंहली रामकथा—

डॉ० दुल्के लिखते हैं सिंहलद्वीप में कोहोम्बा यक्कम नामक धार्मिक विधि के समय सिंहल के प्रथम राजा विजय, नाम राजकुमारी कुवेभी तथा सीता-त्याग की काव्यात्मक कथाओं का प्रधान रूप से पाठ होता है।

कश्मीरी रामकथा—

कश्मीरी साहित्य में रामकथा का प्रवेश बहुत देर से हुआ, लेकिन उसके पश्चात् काफी रचनाएं हुई।

फारसी रामकथा—

फारसी की रामकथा अति प्राचीन है। अकबर के आदेशानुसार अल बदापूनी ने ई० स० १५८३-१५८६ में बाल्मीकीय रामायण का फारसी अनुवाद किया था। फारसी रामकथा की कुछ रचनाएं इस प्रकार है—

रामायण फैजी

लाला अमानतराय कृत बाल्मीकीय रामायण का पद्यानुवाद।

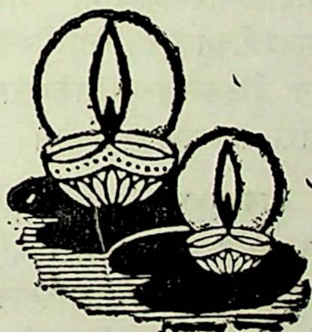
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उर्दू रामकथा—

उर्दू में रामकथा विषयक साहित्य अत्यल्प है। जो है उसका रामकथा की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। १६वीं शताब्दी की निम्न चार रामकथाएं उल्लेखनीय हैं—

मुन्शी जगन्नाथ खुश्तर कृत रामायण खुश्तर
मुन्शी शंकरदयाल फर्हत कृत रामायण मंजूम
बाकेबिहारी लाल बहार का रामायण बहार
सूरजनारायण मेह का रामायण मेह

इस प्रकार राम साहित्य की व्यापकता एवं लोकप्रियता निसन्दिग्ध है।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वेदभाष्यकारः सायणाचार्यः—

प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु"
प्राध्यापक वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

वेदव्याख्यातृषु प्रकाण्डकर्मकाण्डपण्डितपारीन्द्रस्य भगवतः सायणाचार्यस्य नाम यावच्चन्द्रदिवाकरौ भवितृ । आचार्यसायणस्य लेखनी समग्रवैदिकसाहित्ये चचाल । अमुष्यैव महाभागस्य कृपया वैदिकसाहित्यजातं सुरक्षितम् ।

सायणाचार्योऽसौ प्रथमबुक्कभूपतेः विद्यागुरुं सचिवञ्चात्मानमवगमयति । अस्य चाग्रजो भ्राता माधवाचार्यः, प्रथमबुक्कभूपतेः साचिव्यधुरं वहति स्म, पश्चात् त्यक्तसर्वपरिग्रहः संन्यासाश्रममवलम्ब्य विद्यारण्यस्वामीत्याख्यया प्रथितोऽभवत् । शृङ्गेरीमठे च श्रीमच्छङ्करभगवन्मुनिपादपीठमधिष्ठाय च एष प्रकाण्डपण्डितः विविधविषयकान् संस्कृतवाङ्मयस्य शिरोरत्नभूतान् बहून् ग्रन्थान् जग्रन्थ ।

सायणाचार्यस्यापि नैके ग्रन्था माधवीयेतिनाम्नैव दृश्यन्ते । एतावता विदितं भवति यत्सायणाचार्यस्य समयोऽपि स एव यो बुक्कभूपतेः समयः । बुक्कभूपतेः कालश्च १३८६ क्रैस्ताब्दे निर्धारितः कालविद्भिः ।

सोऽयमाचार्यः ऋग्वेदसंहितैतरेयब्राह्मणारण्यकादीनां व्याख्याता, अन्येषाञ्चानेकग्रन्थरत्नानां प्रणेता, वैदिकवाङ्मयस्य परमोद्धारकः यावज्जीवनं सुरभारतीश्रीसमृद्ध्यर्थं प्राणपणेनाऽपि यत् प्रयतितवान् तत्को नाम वैदिकदेशिको न वेत्ति । अनेन वैदिकविद्वन्मण्डलशेखरायमाणेन षिकल्पेनानुगृहीता वयमद्यनूनं कृतिनः समभ्युपपन्ना गौरवस्य गर्वस्य च परां काष्ठामालम्बामहे ।

नूनं भाष्यकारकलापे तत्र भवान् सायणाचार्यः सर्वमूर्द्धाभिषिक्तो विराजते । अनेन उत्कटतरोऽप्येष वेदार्थपन्था अत्यर्थं सरलीकृतः । वेदार्थभास्करोऽयं यदि नाऽविरभविष्यत्तर्हि वेदार्थज्ञानं सर्वथान्धे तमस्येव नितरां न्यमङ्क्ष्यत् । तदर्थञ्च मानवज्ञातिरियं यावच्चन्द्रदिवाकरौ स्थास्यति तत्कार्तज्ञ्यपाशबद्धेति निर्विशङ्कम् । परन्तु सहैव कतिचन वैदिका अतिमात्रमेतदपि तद्विषये सखेदमाकलयन्ति समकालमेव, यदि नाम सायणाचार्योऽसौ एकमात्रं यज्ञपरमेवार्थमनभिनन्द्य आधिभौतिकाधिदैवतानप्यर्थान् वैज्ञानिकधिषणया व्यरचयिष्यत्तर्हि लोकस्य महानुपकारः समपत्स्यत । महीयाँश्च स वेदार्थप्रकाशः कयापि दिव्याभया व्यद्योतिष्यत । वस्तुतः सर्वत्रैव प्रायशः एष महारथः विविधज्ञानविज्ञानाद्यनेकतत्त्वसम्भृतानपि मन्त्रान् हठादाकृष्य यज्ञपरेष्वेवार्थावष्टम्भेषु निगडितवान् इत्याकलयतः कस्य सहृदयस्य न दूयते किल चेतः । सोऽस्य यज्ञपरार्थपारवश्यव्यामोहोऽपि प्रणिभालनीयो दोषज्ञैः । तद्यथाः—

मर्तासो मनुष्याः (वयं यजमानाः)	(ऋग्वेद १-१४४-५)
मर्त्तासो मनुष्याः (ऋत्विजः)	(ऋग्वेद ३-६-१)
नरं पुरुषम् (यजमानम्)	(१-३१-१५)
जन्तुभिः (ऋत्विग्लक्षणैर्मनुष्यैः)	(१-६६-३)
जनाः प्रज्ञासम्पन्नाः (यजमानाः)	(१-४५-६)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् तुम्हें सुख दे, आश्रय दे

—रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

"इन्द्रो वः शर्म यच्छतु"

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।। सामवेद १८६२ ।।

अन्वय :—नरः प्रेत । जयत । इन्द्रः वः शर्म यच्छतु । वः बाहवः उग्राः सन्तु, यथा अनाधृष्याः असथ ।

अन्वयार्थ :—(नरः[1] ! प्रेत) हे साधनाशील मनुष्यों ! आगे बढ़ो और (जयत) विजय प्राप्त करो । (इन्द्रः[2] वः शर्म[3] यच्छतु) इन्द्र—परमेश्वर तुम्हें सुख दे, आश्रय दे । (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारी शत्रुओं को विलोडित करने वाली शक्तियाँ उग्र हों (यथा अनाधृष्याः असथ) जिससे कि तुम काम, क्रोध, लोभ आदि द्वारा न दबाए जा सकने योग्य हो जाओ ।

उपर्युक्त मन्त्र में साधनाशील साधक के लिये यह आशीर्वचन है कि "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" "इन्द्र–जगत् सम्राट् परमैश्वर्यवान् तुम्हें सुख दे, शान्ति दे, आश्रय दे, शरण दे, अपनी गोदी में विश्राम दे, तृप्ति दे ।"

तो क्या सचमुच यदि हमें विद्वानों का, ज्ञानियों का, तपस्वियों का, योगियों का जब यह आशीर्वाद मिल जायेगा तो हम सुख शान्ति और आनन्द को पा लेंगे ?

वैसे योग दर्शन में हम जब महर्षि पतञ्जलि जी के निम्न सूत्र ' सत्य-प्रतिष्ठायां [4]क्रियाफलाश्रयत्वम् ।" तथा उस पर व्यासभाष्य "धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः, स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति । अमोघा–

---

१ नरः—'नरो ह वै देवविशः' (जै १.१३) देवप्रजा साधनाशील मनुष्य ।
२ इन्द्रः—इदि परमैश्वर्ये । परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ।
३ शर्मेति सुखनाम (निघं०) शाश्वत् सुखम् । शरणम् (निरुक्त) ।
४ योग दर्शन २.३६ । सत्य में दृढ़ स्थिति होने पर योगी की वाणी क्रिया फल को आश्रय बनाती है । सत्य में दृढ़ हो जाने पर वह जो कुछ कहता है वह पूर्ण होता है । उस का किसी के प्रति यह कथन कि "तू धार्मिक हो जा !" तो वह धार्मिक हो जाता है । उसका यह कथन कि "तू सुखी हो जा !" तो वह सुखी हो जाता है । इस प्रकार उसकी वाणी अमोघ हो जाती है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऽस्यवाग्भवति ।" का अध्ययन करते हैं तो हमें विश्वास होने लगता है कि महापुरुषों का दिया हुआ यह आशीर्वाद कभी रिक्त नहीं जा सकता । परन्तु महापुरुषों के इन आशीर्वचनों को सार्थक करने के लिये भी हमारे हृदयों में उनके वचनों के प्रति श्रद्धा होनी चाहिये तथा वैसा बनने और सब कुछ पाने के लिये हमें तप भी करना चाहिए । जैसे पाणिग्रहण संस्कार के समय सभी आयु अनुभव एवं ज्ञान से वृद्ध महानुभाव तथा पुरोहित विद्वान् आचार्य आदि वर-वधू को यह आशीर्वाद देते हैं—"ओ३म् सौभाग्यमस्तु । ओ३म् शुभं भवतु ।" और 'वधू' को 'सौभाग्यवती भव देवि !' परन्तु इन आशीर्वादों को सार्थक एवं सफल बनाने के लिये भी उस वधू को, उस नारी को तप करना पड़ता है । इसको हम मधुपर्क विधि से भली-भान्ति समझ सकते हैं—

मधुपर्क में तीन वस्तुएं होती हैं--एक घृत, दूसरी दधि, और तीसरी वस्तु 'मधु' होती है । इस मधुपर्क विधि से भविष्य में नारी अपने को सौभाग्यवती बनाने की सुन्दर शिक्षा ले सकती है । 'घृत' आयु का प्रतीक है—"आयुर्वैघृतम्" अर्थात् नारी जब भी अपने पति को भोजन आदि पदार्थ परोसे तो उसमें उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि घृत या घृत की श्रेणी में आने वाले स्निग्ध पदार्थों का समावेश अवश्य होना चाहिये । क्योंकि ऐसा करने से उसकी आयु बढ़ेगी । अब जब उस के पति की आयु बढ़ेगी, तो यह निश्चित है कि उसका सौभाग्य अटल होगा ।

दधि तक्र आदि वह वस्तु है जो रूप को निखारती है, हृदय बुद्धि आदि को निखारती है एवं शरीर को बलिष्ठ बनाती है । अतः दधि या दधि की श्रेणी में आने वाले पदार्थों का समावेश भी नारी को भोजन आदि में करना चाहिये ।

'मधु'—माता, बहिन और नारी में प्रायः मोह आदि वश यह कमजोरी रहती है कि वे स्नेहवश सदा ध्यान रखती हैं कि जो कुछ भी वे खाद्य पदार्थ बनाएं वह मधुर–स्वादिष्ट होना चाहिये जिससे उन का पुत्र, भाई वा पति बड़े प्यार से भोजन पकवान आदि का सेवन कर सके । परन्तु मधुपर्क विधि में मधु से नारी को सावधान किया गया है कि वह जब भी पति को भोजन वा पकवान आदि परोसे तो उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि जैसे मधु मीठा है पर उस के गुण अन्य मीठे गुड़, शक्कर आदि के समान नहीं हैं, बल्कि उन से विशेष हैं । जहाँ यह मधु मीठा है वहाँ रोगविनाशक भी है, जबकि अन्य मीठे पदार्थ जहाँ स्वादिष्ट हैं वहाँ रोग को भी उत्पन्न कर सकते हैं, तभी तो हमारे आयुर्वेद विशेषज्ञ मधु से औषधियों का सेवन करने को प्रेरित करते हैं । अतः नारी को चाहिये कि वह जो भी भोज्य पदार्थ पति को परोसे, उस में केवल यह ध्यान न दे कि वह स्वादिष्ट हो, अपितु यह भी ध्यान दे कि वह जहाँ स्वादिष्ट हो वहाँ वह रोग विनाशक भी हो ।

अब जो देवी अपने पति को भोजन परोसते हुए यह ध्यान रखती है कि उसका बनाया हुआ भोजन आयुवर्धक हो, शरीर को स्वस्थ और हृदय बुद्धि आदि को बलिष्ठ करने वाला हो । फिर वह भोजन केवल स्वादिष्ट ही न हो अपितु पति के शरीर को नीरोग बनाने वाला भी हो ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऐसी अवस्था में आप स्वयं विचार करें कि जब उस के बनाए हुए भोजन आदि पदार्थों का सेवन करने पर उस का पति शरीर से नीरोग होगा, नीरोग ही नहीं प्रत्युत बलिष्ठ भी होगा और सर्वविध कार्यों को चाहे वे शारीरिक परिश्रम के हों या बौद्धिक हों, उन्हें सोत्साह सम्पन्न कर सकेगा एवं वह दीर्घायुष्य वाला भी होगा, तो उस नारी का सौभाग्य अटल रहेगा कि नहीं ? यदि उस का सौभाग्य अटल होगा तो वह सौभाग्यवती होगी कि नहीं ? और जब वह सौभाग्यवती होगी तो विवाह काल में आयु अनुभव एवं ज्ञान से वृद्ध महानुभावों का तथा पुरोहित विद्वान् आचार्य आदि महापुरुषों का आशीर्वाद सार्थक होगा कि नहीं ? आप कहेंगे, अवश्य सार्थक होगा।

ठीक इसी प्रकार वेद के उपर्युक्त मन्त्र में जो यह आशीर्वाद "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" दिया गया है, वह सौभाग्य से चाहे हमें अपने आचार्यों से मिला हो या ज्ञानियों, तपस्वियों वा योगियों से मिला हो वह भी अवश्य सार्थक होगा। परन्तु उस के सार्थक करने के लिये भी हमें चाहिये कि हम उनके सदुपदेशों पर श्रद्धा रखें और तदनुसार तपःपूर्वक उन पर आचरण करें।

कितना प्रिय है यह आशीर्वाद, कितना हृदयगाही है यह आशीर्वाद, कि "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" भगवान् तुम्हें सुख दे, तृप्ति दे। पर इस आशीर्वाद के पाने वालों में इसका पात्र बनने के लिये जहाँ श्रद्धा की अपेक्षा है वहाँ तदनुसार तप की आवश्यकता है।

इन्द्र-जगत् सम्राट्-परमैश्वर्यवान् परमात्मा तुम सब को सुख-शान्ति और आनन्द आदि तो देगा और इस प्रकार उन महापुरुषों के आशीर्वचन भी सफल होंगे, परन्तु यह सब कुछ तब होगा जब तुम सब अपनी तन नगरी के इन्द्र बनोगे, राजा बनोगे अर्थात् अपनी इन्द्रिय रूप प्रजा के स्वामी बनोगे। अनिन्द्र को इन्द्र सुख दे, शान्ति दे, आनन्द दे तो भला कैसे दे ? अतः यह सब पाने के लिये हमें इन्द्र बनना होगा, इन्द्रियों का स्वामी बनना होगा, तभी तो उस इन्द्र के हम कृपापात्र बन सकेंगे।

उपर्युक्त मन्त्र में हमें सम्बोधित भी यथोचित शब्द से ही किया गया है। (नरः !) हे विषयों में न रमण करने वाले अर्थात् विषय-वासनाओं से ऊपर उठे हुए साधनाशील मनुष्यों ! (प्रेत) आगे बढ़ो और (जयत) विजय प्राप्त करो। आगे बढ़ने और जीवन में निरन्तर विजय प्राप्त करने के लिये भी यह आवश्यक है कि तुम 'नर' बनो—विषयों से ऊपर उठो-इतने ऊपर उठो कि जगत् सम्राट् इन्द्र के समान तुम भी अपनी तन नगरी के इन्द्र सम्राट् बन जाओ, तभी तो वह इन्द्र तुम्हें सुख देगा, विश्राम देगा। यदि तुम्हारी इस तन नगरी की इन्द्रिय रूप प्रजा काम आदि का शिकार होकर भीतर विप्लव मचा रही हो, तो बताओ वह इन्द्र तुम्हें कैसे सुख दे देगा ? हाँ उस चक्रवर्ती सम्राट् को अपनी सहायता के लिये पुकारो तो वह तुम्हें सहयोग अवश्य देगा जिस से तुम अपनी प्रजा के स्वामी बन सकने में सफल हो सकोगे।

(नरः ! प्रेत, जयत) हे विषय वासनाओं में ही न रमण करने वाले अर्थात् उन्हीं में ही न डूबे रहने वाले नर नारियो ! सच्चे साधको ! तुम आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कितने उद्बोधक हैं, कितने उत्साहप्रद हैं ये वेद वचन, पर आगे बढ़ें कैसे, ऊपर उठें कैसे और कैसे विजय प्राप्त करें ?

यहाँ "प्रेत" में प्र उपसर्ग पूर्वक 'इण् गतौ' धातु है । गति के तीन अर्थ है–ज्ञान, गमन और प्राप्ति हे साधको ! तुम ज्ञान की दृष्टि से आगे बढ़ो, ऊपर उठो । जितना कल जानते थे, उस से आप के ज्ञान में आज कुछ परिवर्धन होना चाहिये । फिर केवल ज्ञान की दृष्टि से नहीं, गमन-आचरण की दृष्टि से भी तुम आगे बढ़ो, प्रगति करो अर्थात् तुम्हारा ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियों में ही न प्रवाहित होता रहे बल्कि वह कर्मेन्द्रियों में भी प्रवाहित होने लगे ऐसा प्रयत्न करो । इसी में तुम्हारे ज्ञान की सार्थकता है, नहीं तो "ज्ञानं भारः क्रियां बिना" केवल ज्ञान जो आचरण का विषय नहीं बन पाता, वह तो व्यर्थ का बोझा मात्र ही होता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

कई तो शास्त्रों का अध्ययन करके भी मूर्ख ही रहते हैं, क्योंकि वे तदनुसार आचरण नहीं करते । वास्तव में जो क्रियावान् है वही विद्वान् है, वही शास्त्रज्ञ है । क्योंकि कितनी भी सुचिन्तित सुन्दर औषधि क्यों न हो, वह भी केवल नाम मात्र के उच्चारण से तो नीरोग नहीं कर देती ।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रानुसार जहाँ यह कहा गया कि ज्ञान प्राप्ति के लिये आगे बढ़ो, वहां ज्ञान के अनुसार आचरण करने के लिये भी आगे बढ़ने अर्थात् पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया गया है ताकि ज्ञान पूर्वक आचरण कर के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके ।

"जयत" वेद कहता है आप की विजय प्राप्ति में, लक्ष्य प्राप्ति में जो विघ्न आएं, बाधाएं आएं, उन को दूर करते हुए–उन को पैरों तले रोंदते हुए उन पर विजय प्राप्त करते हुए अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करो ।

"नरः ! प्रेत" वेद के उपर्युक्त मन्त्र में साधकों को सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है कि हे नरो[1] ! हे साधकों ! तुम अपने जीवन को इतना ऊंचा उठाओ कि तुम अपने जीवन से दूसरों के लिये भी प्रेरणा के स्रोत बन सको, दूसरो का भी नेतृत्व कर सको इसलिये तुम 'प्रेत' आगे बढ़ो । 'प्रेत' शब्द में 'प्र' उपसर्ग का भी अपना ही महत्त्व है अर्थात् तुम प्रकृष्ट रूप से आगे बढ़ो । तात्पर्य यह है कि यदि तुम ज्ञान की दृष्टि से आगे बढ़ो–ज्ञान प्राप्त करो तो वह भी प्रकृष्ट अर्थात् उत्कृष्ट ही होना चाहिये । उस ज्ञान के अनुसार गमन करो, आचरण करो तो वह भी प्रकृष्ट–उत्कृष्ट रूप में ही होना चाहिये, तात्पर्य

---

१ "नृ नये नयतीतिना नरौ नरः ।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह है कि तुम्हारा प्रज्ञान प्रकृष्ट ज्ञान अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान तुम्हें प्रगति-प्रगमन-प्रकृष्ट गमन प्रकृष्ट आचरण में प्रेरित करे जिस से कि तुम अपने प्रकृष्ट-उत्कृष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सको।

'जयत' इस प्रकृष्ट उद्देश्य की प्राप्ति में तुम्हारे सम्मुख जितनी भी आपत्तियां आयें, बाधायें आयें उन सब को तुम सदा जीतते चले जाओ। सदा विजय का सेहरा तुम्हारे सिर पर बंधता रहे, सर्वदा विजय का डंका बजता रहे।

हे साधक नरनारियों! यदि तुम्हारा उद्देश्य पवित्र रहा और उस उत्कृष्ट और पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिये साधन रूप तुम्हारा ज्ञान और आचरण भी उत्कृष्ट रहा, पवित्र रहा तो यह विश्वास रक्खो कि तुम्हारी विजय में किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं रहेगा। महात्मा गांधी जी कहा करते थे कि "तुम्हारा उद्देश्य जहाँ उत्तम और पवित्र होना चाहिये वहाँ उसकी प्राप्ति के साधन भी उतने ही उत्तम और पवित्र होने चाहिये।" महर्षि पतञ्जलि जी भी परम पवित्र परमेश्वर की प्राप्ति के लिये अष्टांग योग का प्रतिपादन करते हैं। इसी अष्टाङ्ग योग में वे यम-नियम आदि पर अत्यधिक बल देते हुए कहते है कि "अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि को महाव्रतों के रूप में, सार्वभौम रूप में जब योगी स्वीकार करते हैं तभी उन्हें अपने पथ में सफलता मिलती है।"

मन्त्र में आगे पुनः आशीर्वाद दिया गया है कि 'इस पावन लक्ष्य की उपलब्धि में "वः वाहवः उग्राः सन्तु यथा अनाधृष्याः असथ" तुम्हारी शत्रुओं की बाधक परिस्थितियों को विलोडित करने वाली बाहुएं-शक्तियां उग्र हों ताकि तुम काम, क्रोध, मोह आदि विघ्न बाधाओं द्वारा न दबाए जा सको अर्थात् उनके द्वारा अपने लक्ष्य से न विचलित किए जा सको।

हे साधनाशील साधको! जिस प्रकार के काम, क्रोधादि से तुम्हारी शक्तियों का धर्षण न हो सके, उस प्रकार से तुम्हारी शक्तियां उग्र हों। यह सब कैसे और कब होगा? जब तुम नर बनोगे, विषयों में रमण न करते हुए अर्थात् उन से ऊपर उठने का प्रयास करते हुए जल में कमल की भांति जीवन व्यतीत करते रहोगे और फिर अन्यों के लिये भी अपने जीवन से प्रेरणा का स्रोत बन कर उनका नेतृत्व करते रहोगे। अब इस के लिये यदि तुम प्रकृष्ट रूप से ज्ञानार्जन करोगे; तुम अनुकूल प्रकृष्ट आचरण ओर अपने जीवन का उद्देश्य अी उत्तम ही बनाए रखोगे तो आप अवश्य विजय प्राप्त करोगे। इस प्रकार वेद का यह आशीर्वाद सार्थक होगा।

"इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" जगत् सम्राट् प्रभु तुम्हें सुख दे, सुख के सर्वविध साधन दे, शान्ति दे, आनन्द दे।

वैसे लौकिक सुख वा सुख के साधन तो ये माता पिता और राजा आदि भी तुम्हें दे सकते हैं पर यह भी उसी परमेश्वर की कृपा से, पर यह स्मरण रखना कि परमैश्वर्य-परम सुख-शाश्वत सुख, शान्ति एवं आनन्द तो केवल वही भगवान् ही तुम्हें दे सकता है। अतः जिसकी शरण में जाने से दोनों ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है उसी इन्द्र की शरण में जाओ।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला
(८ सितम्बर से १० सितम्बर १९८२)

उद्घाटन भाषण

श्रीमती माधुरी शाह, अध्यक्ष, वि. वि. अनुदान आयोग

मान्यवर प्रख्रिष्टा महोदय, कुलाधिपति महोदय, कुलपति महोदय उपस्थित विद्वज्जन,

आपने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आयोजित "वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला" के उद्घाटन हेतु मुझे आमन्त्रित किया—इस सम्मान के लिये मैं आपकी आभारी हूँ।

भारत के नवजागरण के आन्दोलन में ऋषि दयानन्द का स्थान अद्वितीय है। उनसे प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आज से ८० वर्ष पहले एक नई आशा और नई स्फूर्ति से गंगा नदी के तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। उस समय की शिक्षा पद्धति से वे सन्तुष्ट न थे। एक ओर विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़े हुए युवक ब्रिटिश शासन के सचिवालयों में नौकरी की खोज करते थे, दूसरी ओर प्राचीन शिक्षा स्थलों पर चल रहीं पाठशालाओं में अध्ययन करते हुए विद्यार्थी आधुनिक ज्ञान विज्ञान से सर्वथा विमुख थे। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में ऋषि दयानन्द ने समग्र शिक्षा का जो मन्त्र प्रस्तुत किया था उसको मूर्त रूप देने हेतु महात्मा हंसराज और उनके सहयोगियों ने १८८६ में डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर की स्थापना की थी, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और पं० गुरुदत्त डी० ए० वी० कॉलेज की उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं थे। अतः उन्होंने गुरुकुल की स्थापना का बीड़ा उठाया, जिसमें कि भारतीय और विदेशी दोनों शिक्षा पद्धतियों का समन्वय हो और दोनों के गुण ग्रहण करते हुए दोनों के दोषों से मुक्ति हो। गुरुकुल की प्रारम्भिक योजना में वेद-वेदांग और संस्कृत साहित्य की शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को भी यथोचित स्थान दिया गया और शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को रखा गया। गुरुकुल में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय, स्वावलम्बन और स्वदेशी का विशेष महत्त्व था।

आज जब चहुँ ओर से हमें शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं ने घेर रखा है, वैदिक शिक्षा के आधारभूत मूल्यों पर गहन विचार की आवश्यकता है। आज देश में १२० से अधिक विश्वविद्यालय हैं ४,५०० कॉलेज हैं ४०००० माध्यमिक पाठशालयें हैं और छः लाख प्राथमिक पाठशालायें हैं, उच्च शिक्षा के संस्थानों में लगभग दो लाख अध्यापक काम कर रहें हैं। इक्कीस लाख विद्यार्थी उनमें अध्ययन कर रहें हैं। अढ़ाई लाख विद्यार्थी स्नातकोत्तर संस्थानों में अध्ययन कर रहे हैं। वैज्ञानिक जनशक्ति की संख्या के अनुसार हमारी गणना विश्व के राष्ट्रों में तीसरे स्थान पर है। हमारे उच्चतम वैज्ञानिक विश्व के किसी भी राष्ट्र के वैज्ञानिकों के समकक्ष खड़े हो सकते हैं। लेकिन फिर भी देखा जाए तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं, सामाजिक लक्ष्यों और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल नहीं हो पा रही। हमारे स्नातक–स्तर के कोर्स जो कि पुरानी पद्धति पर आधारित हैं देश की आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहे।

यह ठीक है कि विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य विद्या का प्रसार और नए अनुसंधान करके जगत् के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस कार्य हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि विश्वविद्यालयों का वातावरण शुद्ध, शान्त और तपोमय हो, जिससे कि विद्योपार्जन और ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधान में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। लेकिन यदि हम यहीं तक ही विश्वविद्यालय के लक्ष्य को सीमित कर दें तो जन साधारण के साथ यह एक बहुत भारी अन्याय होगा। आर्यसमाज का नवां नियम है, प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकती है यदि शिक्षा संस्थान अपने अड़ोस–पड़ोस में जाकर निर्बल वर्ग की और ग्रामवासीयों की जरुरतों, इच्छाओं, अभिलाषाओं, कमजोरियों और शक्तियों का अध्ययन करें और उनके साथ मिल–जुल कर अपनी शिक्षा का लाभ उनको देते हुए उनके स्तर को ऊंचा करने की कोशिश करें। इससे एक ओर तो अध्यापकों और विद्यार्थियों में समाज सेवा की भावना उजागर होगी, दूसरी ओर यह भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी कि हमारी शिक्षा में क्या त्रुटियां हैं और हमारे पाठ्यक्रम को क्या मोड़ देना अभीष्ट है ?

इस सन्दर्भ में मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके विश्वविद्यालय ने अपने मातृग्राम कांगड़ी को सम्भाला है और बिजनौर के जिला अधिकारियों की सहायता से वहां ग्राम विकास का एक अभूतपूर्व कार्यक्रम शुरू किया गया है। मुझे बताया गया है कि इस वर्ष वहाँ ३०,००० शहतूत के पौधे और २,००० सुबबूल के पेड़ लगाने का कार्यक्रम है। इसके अतिरिक्त वहाँ एक बायोगैस प्लान्ट और पवनचक्की लगाने की योजना भी है जिससे कि घरों में बिजली और पीने का पानी उपलब्ध होगा। कलैक्टर बिजनौर ने निर्बल–आवास, दुकानों के निर्माण, सड़कों को पक्का करने और काम धन्धों को शुरू करने के लिये यथेष्ठ अनुदान और ऋण उपलब्ध कराने का आश्वासन भी दिया है। आशा है आपके सहयोग से ग्राम–वासी इन योजनाओं से पूरा लाभ उठायेंगे।

इस बात को हमें स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिये कि जो शिक्षा नैतिक मूल्यों के विकास की अवहेलना करती है उसे शिक्षा की संज्ञा नहीं दी जा सकती। नैतिक मूल्यों का विकास और निर्माण में उच्चतम संस्कारों की प्रतिष्ठा किसी भी शिक्षा प्रणाली का आधार स्तम्भ है यही गुरु शिष्य परम्परा का मुख्य ध्येय है। गुरु शिष्य को निकटस्थ करके उसकी रक्षा और शिक्षा-दीक्षा करता है, उसकी समस्याओं का निदान करता है "उसके समक्ष आदर्श जीवन के लक्ष्य उपस्थित करता है, जिससे कि ब्रह्मचारी सन्मार्ग में प्रेरित हो और पापाचरण से बचे। जो धर्मयुक्त कार्य हों उनको ग्रहण करे। विद्वानों का सत्कार करे, माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करे। आज देश को ऐसे ही गुरुकुलों की आवश्यकता है, जहाँ चरित्रवान् और धर्मनिष्ठ गुरु ब्रह्मचारियों के सम्मुख आदर्श जीवन का उदाहरण उपस्थित करने में सदा प्रयत्नशील हों। हमें ऐसे गुरुकुलों की आवश्यकता है जहां गुरुजन और ब्रह्मचारी सत्य के ग्रहण करने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और असत्य के त्याग में सर्वदा उद्यत हों, जहां सब काम धर्म के अनुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके किए जायें, जहां का वातावरण परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो, जहाँ अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि हेतु अहर्निश यज्ञ रचे जाएं।

सभी ओर से आवाज उठ रही है कि आज की शिक्षा-पद्धति से शिक्षित बेकारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि बहुत सी सरकारी नौकरियों के लिये स्नातक की उपाधि की शर्त हटा दी जाए। जिस कार्य के लिए जिस गुण की आवश्यकता हो उसी गुण की परख करके नौकरीदाता प्रार्थी को नौकरी प्रदान करें और यह गुण विश्वविद्यालय प्रणाली से बाहर भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने महाविद्यालयों में प्रवेश के लिये निम्न छः बिन्दु की नीति निर्धारित की है।

(क) किसी भी विभाग अथवा महाविद्यालय में प्रवेश उस विभाग अथवा महाविद्यलय की क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए योग्यता के आधार पर देना चाहिये।

(ख) नये विश्वविद्यालय, महाविद्यालय स्थानीय शैक्षणिक आवश्यकताओं के सर्वेक्षण के पश्चात् केवल पिछड़े इलाकों में ही खोले जाएं।

(ग) माध्यमिक स्तर पर अर्थंकरी विद्या का प्रबन्ध किया जाये।

(घ) स्नातक शिक्षा के पाठ्यक्रम में समुचित संशोधन किया जाए। जिस से कि स्नातकों को समाज की अर्थव्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त करने में कठिनाई न हो।

(ङ) पत्राचार के द्वारा शिक्षा-परीक्षा का प्रबन्ध विस्तृत किया जाए।

(च) समाज के निर्बल वर्गो के लिये शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाई जाएं।

आज देश की जनसंख्या, स्वास्थ्य, पर्यावरण, जन–संचार तथा अन्य कितने ही क्षेत्रों में मध्य स्तर के कारीगरों, शिल्पियों की आवश्यकता है, यदि परम्परागत पाठ्यक्रमों में थोड़ा बहुत अदल-बदल करके इन सामाजिक जरुरतों को पूरा करने के लिये कोई विश्वविद्यालय पहल करेगा तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उसकी सहायता के लिये तत्पर होगा।

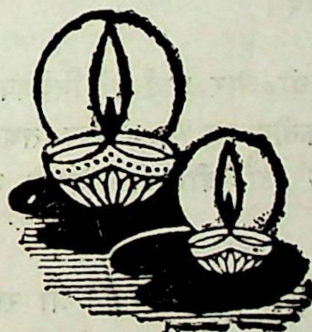
जहां ज्ञान वृद्धि और अनुसन्धान का सम्बन्ध है वहां भी हम चाहेंगे कि ऐसे विषयों पर अनुसंधान हो जिनसे स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय समस्याओं के निदान ढूंढने में सहायता मिले।

गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय स्तर की मान्यता प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि आपने विशेष क्षेत्र में अपना एक परिपक्व स्थान प्राप्त कर लिया है और उस क्षेत्र में आपका स्तर अन्य संस्थाओं से ऊंचा है। भले ही इस विश्वविद्यालय में सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह विभिन्न विषयों के अध्ययन अध्यापन का प्रबन्ध न हो परन्तु अपने चुने हुए क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय को उपलब्धियां और प्रतिष्ठा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अद्वितीय होनी चाहिये । वेद सत्य विद्या का पुस्तक है । वेद को पढ़ना पढ़ाना, सुनना-सुनना सब आर्यों का परम धर्म है, अतः वेद में गहन अनुसंधान करना, वेद का अध्यन अध्यापन और विश्व की समस्त भाषाओं में इसका प्रचार करना आपका मुख्य कर्तव्य है । यह प्रश्न आपको स्वयं से पूछना होगा और इसका उत्तर देना होगा कि आप इस दिशा में कितने अग्रसर हैं । इस प्रश्न का उत्तर आज राष्ट्र आपसे मांग रहा है । आपके पास एक बहुत कीमती निधि है । आप उसका कितना प्रयोग कर रहे हैं ? आज देश को मार्गदर्शन की आवश्यकता है । वैदिक ज्योति के आप प्रकाशपुञ्ज हैं । आशा है, गुरुकुल विश्वविद्यालय से ऐसी ज्योति प्रस्फुटित होगी जो न केवल देश का अपितु विश्व का मार्ग प्रशस्त करेगी । इस आशा और आशीर्वाद के साथ के इस राष्ट्रीय महत्त्व की वैदिक शिक्षा कार्यशाला का उद्घाटन करती हूँ ।

धन्यवाद !



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

१८ दिसम्बर १९८२ को गौतम नगर दिल्ली में स्थित दयानन्द वेद–विद्यालय में आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी की अध्यक्षता में एक वेद–सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने भाग लिया। अन्त में आचार्य जी ने वेदों पर अपना सारगर्भित भाषण दिया तथा इस बात पर बल दिया कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना प्रत्येक आर्य का प्रथम धर्म है।

२१ दिसम्बर १९८२ को पुण्यभूमि (कांगड़ी ग्राम में आयोजित एन० एस० एस० शिविर का उद्घाटन, जिलाधीश बिजनौर, श्री ओ० पी० आर्य ने किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी मुख्य अतिथि थे। इस समारोह में विश्वविद्यालय के शिक्षक, कर्मचारी तथा वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की अनेक पुरुष व स्त्रियां भी उपस्थित थीं। इस अवसर पर डा० जबर सिंह सैंगर, कुलसचिव डा० विजयशङ्कर जी ने भी भाषण दिया। इस दस दिवसीय शिविर में ४७ छात्रों तथा ५ स्थानीय युवकों ने भाग लिया तथा निम्न कार्य किये :- कांगड़ी ग्राम में विद्यालय के निकट के कुएं की सफाई तथा पानी निकास के लिए नालियों का निर्माण, वृक्षारोपण के लिए गड्ढे खोदना, खड़ंजों का निर्माण एवं ग्राम का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण आदि।

इस शिविर के प्रथम दिन सी० बी०आर०आई० के निदेशक श्री वर्मा जी ने ग्रामवासियों के लिए सस्ते झोपड़ीनुमा मकान बनाने की तकनीक पर भी प्रकाश तथा जिसे काफी सराहा गया। यह पूर्ण शिविर श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कोडिनेटर, डॉ० बी० डी० जोशी एवं डॉ० त्रिलोकचन्द्र त्यागी, प्रोग्राम आफिसर के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ।

२३ दिसम्बर १९८२ को आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी वेदालङ्कार ने श्री रणवीर जी, सम्पादक-मिलाप दिल्ली की मृत्यु पर शान्ति यज्ञ किया। तत्पश्चात् श्री आचार्य जी ने वेदोपदेश भी दिया।

माननीय कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी के नेतृत्व में गुरुकुल कांगड़ी परिसर एक नयी करवट ले रहा है। उन्हीं की प्रेरणा से २३ दिसम्बर १९८२ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परिसर में श्रद्धानन्द–बलिदान दिवस के अवसर पर श्रद्धानन्द द्वार से एक जूलूस निकाला गया। यह जुलूस गुरुकुल परिसर में स्वामी श्रद्धानन्द जी के नारे लगाता हुआ गुरुकुल कार्यालय के समक्ष आया। यहां पर कुल-पताका फहराने के पश्चात् जुलूस वेद–मन्दिर में एक सभा में परिवर्तित हो गया। इस सभा में सर्व श्री सरदारी लाल जी वर्मा, आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी, डॉ० जबरसिंह सैंगर, कुलसचिव, डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, डॉ० विजयशंकर जी तथा डॉ० विष्णुदत्त जी राकेश आदि ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। अन्त में कुलाधिपति जी ने स्वामी जी को श्रद्धाञ्जलि देते हुए गुरुकुलीय शिक्षा–पद्धति एवं विचारधारा को अपनाने पर बल दिया। सभा का संयोजन श्री

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जितेन्द्र जी, सहायक मुख्याधिष्ठाता जी ने किया। इसी अवसर पर गुरुकुल परिसर में एक द्वि-दिवसीय हाकी-टूर्नामेन्ट का भी आयोजन किया गया। इस टूर्नामेन्ट में ऋषिकेश, बी० एच० ई० एल०, रुड़की, मुजफ्फरनगर आदि की टीमों ने भाग लिया।

दिनांक २५ दिसम्बर ८२ को अन्तिम मैच गुरुकुल व बी० एच० ई० एल० के मध्य हुआ, जिसमें गुरुकुल की टीम को विजय प्राप्त हुई। इस अवसर पर आचार्य एवं उपकुलपति जी ने पुरस्कार-वितरण किया तथा टूर्नामेंट के खिलाड़ियों को और अच्छा प्रदर्शन करने के लिये प्रेरित किया। इस टूर्नामेंट का आयोजन श्री जितेन्द्र जी एवं मुख्याध्यापक डॉ० दीनानाथ के नेतृत्व में किया गया।

२६ दिसम्बर ८२ को आचार्य एवं उपकुलपति, श्री ओमप्रकाश मिश्र क्रीड़ाध्यक्ष जी ने डॉ० काश्मीर सिंह तथा करतार सिंह के नेतृत्व में जम्मू में होने वाले अन्तरविश्वविद्यालय हाकी-टूर्नामेंट में भाग लेने के लिये गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की टीम को शुभकामनाओं के साथ विदा किया।

२९ दिसम्बर ८२ को एन० एस० एस० शिविर का समापन समारोह सम्पन्न हुआ। इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री घनश्याम पन्त, स्थानीय न्यायाधीश थे। इस अवसर पर उपकुलपति श्री रामप्रसाद, डॉ० जबरसिंह सैंगर, कुलसचिव, डॉ० विजयशंकर आदि उपस्थित थे। यह समस्त कार्य श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कोर्डिनेटर के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। इस शिविर के प्रोग्राम आफिसर डॉ० बी० डी० जोशी तथा डॉ० त्रिलोकचन्द्र त्यागी थे।



CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



[illegible] প্রেস, ([illegible]) [illegible] ১৬১৩

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

